सत्साहित्य प्रकाशन

मेरे हृदय-देव

महात्मा गांधी के हृदय-स्पर्शी संस्मरण और
प्रेरक विचार-मंथन

हरिभाऊ उपाध्याय

•

•

१९६५
सस्ता साहित्य-मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मत्री, सस्ता साहित्य-मडल
नई दिल्ली

पहली बार १९६५
मूल्य
तीन रुपये

प्रकाशकीय

इस पुस्तक मे लेखक द्वारा समय-समय पर लिखी गई गाधीजी विषयक रचनाओ का सग्रह है। विद्वान् लेखक को न केवल गाधीजी के निकट रहने का अवसर मिला था, अपितु उन्हे गाधी-विचारधारा को निकट से समझने और तदनुसार कार्य करने का भी अवसर मिला था। यही कारण है कि प्रत्येक रचना मे पाठक लेखक की गहरी हार्दिकता एव आत्मीयता का स्पर्श अनुभव करेगे।

कुछ रचनाए भावाजलि के रूप मे है, कुछ मे गाधीजी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला गया है। और कुछ मे उनकी विचार-धारा की सार्वभौम और सार्वकालिक उपयोगिता बताई गई है।

अत की कुछ रचनाओ मे उन्होने स्पष्ट किया है कि गाधीजी का सबसे उत्तम और उपयुक्त स्मारक क्या हो सकता है।

परिशिष्ट मे दो वार्ताए दी गई है। एक मे बापू के कुछ ग्रथो की समालोचना है, दूसरे मे कुछ पत्र है और तीसरे मे कुछ स्वरचित कविताए है।

पूरी पुस्तक की सामग्री यद्यपि एक भावुक व्यक्ति की लेखनी से लिखी गई है, तथापि उसमे गाधीजी के महान् व्यक्तित्व तथा लोकोपयोगी कृतत्व पर अच्छा प्रकाश पडता है।

हर्ष की बात है कि पुस्तक गाधी-जयती के पुण्य पर्व पर, २ अक्तूबर को निकल रही है। हमे विश्वास है कि इसे सभी वर्गो के पाठक चाव से पढेगे।

—मंत्री

यह पुस्तक क्यों ?

बापू को गये १८ साल हो गए। अपने जीवन-काल मे उन्होने जिन मूल्यो की स्थापना या पुष्टि की थी, यद्यपि वे कुछ ओझल-से होते हुए दिखाई देते है, फिर भी उनकी याद तो सदैव आती ही रहती है। जब चीन ने एकाएक हमारे सीमा-क्षेत्र मे छापा मार दिया, तब तो उनका अभाव बहुत ही खटका। यदि बापू होते तो हमारे पडितजी को—जवाहरलाल-जी को बडा सहारा रहता। फिर भी बापू के उपदेश रास्ता बता ही रहे हैं। उन्होने हमे निर्भयता का, साहस का, आत्मविश्वास का और आत्म-निर्भरता का पाठ पढाया। उन्होने हमे सत्य पर डटे रहने और प्रतिपक्षी, विरोधी, या आक्रामक के अन्याय-अत्याचार का डटकर मुकाबला करने की सदैव शिक्षा दी। उन्होने कहा—तुम व्यक्ति को बुरा मत समझो, उसके कुकार्यो को बुरा समझो, उसका विरोध करो। व्यक्ति के प्रति स्नेह-सहानुभूति, उसके दुष्कार्यो के प्रति तिरस्कार, और विरोध। इसे उन्होने अहिंसा कहा था। चीन के मामले मे हमारे राष्ट्र-नेता जवाहरलाल ने दोनो बातो को निभाया।

पहले सत्य को ले। हमने सहीतौर पर जिस सीमा-रेखा को भारत की माना उसपर वह डटे रहे। उसपर विचार-विनिमय, बातचीत करने को सदैव तैयार रहे, परन्तु शस्त्र और फौज की धमकी से डरकर नही। शस्त्रास्त्र और फौज की धमकी यदि है तो उसका कसकर मुकाबला किया जायगा—और हर कीमत पर जवाब दिया जायगा। उससे डरकर या दबकर समझौते की या सुलह की बातचीत करना सत्य की, सत्याग्रह की, शिक्षा के विपरीत होगा। जवाहरलालजी और उनके नेतृत्व मे सारे भारत ने इसको सही माना और इसपर प्राणपण से डटा रहा। यह सत्या-ग्रही तरीका है।

'अहिंसा' को पडितजी ने अपने ढग से खूब निवाहा। एक भी शब्द

उन्होने कभी न ऐसा कहा, न लिखा, जो चीन के नेताओ—सर्वश्री माओ और चाऊ के सम्मान को गिरानेवाला हो। अलबत्ते भारत मे—दूसरो ने जगह-जगह ही, चीन-नेताओ की कार्य-नीति, धोखे से किये आक्रमण आदि की आलोचना के साथ-साथ वहा के इन दोनो नेताओ की शान मे ऐसे शब्द भी कहे, ऐसे भाव भी प्रकट किये, जो न बापू को पसन्द आते, न पडित जवाहरलालजी को ही पसन्द थे। फिर भी, जनता का जोश एकदम उमड पडा—धोखे से जो छापा मारा—उससे उसका अन्तस्तर इतना झकझोर उठा कि इतनी मर्यादा रखना उसके काबू के बाहर हो गया। यदि बापू होते तो इसे कडाई से रोकते, पडितजी ने अपना उदाहरण देश के सामने रखकर सन्तोष मान लिया। यह फर्क बापू और पडितजी दोनो के व्यक्तित्व के विकास की भिन्न-भिन्न स्थितियो को प्रकट करता है। दोनो की साधना का भेद बताता है। परन्तु इस प्रश्न पर विचार करने की, इसको देखने की दृष्टि दोनो की एक थी—इसमे मुझे कोई शक नही है।

बापू ने हमे केवल स्वतन्त्र ही नही किया—भावी राज्य, समाज-रचना की दिशा भी दिखाई—उसकी दागबेल भी वह डाल गए। वह अधिक जीवित रहते तो सम्भव था, बल्कि निश्चय ही भरोसा होता कि वह हमारा स्पष्ट मार्ग-दर्शन करते। परन्तु अब तो उनकी दिखाई दिशा, उनके लगाये मील के पत्थर ही हमारे काम के है। हमे उनसे लाभ उठाना चाहिए। वह कोई हवाई विचारक नही थे, जो कहते थे उसे कर दिखाने मे विश्वास रखते थे, ऐसा प्रयत्न भी करते थे। इसलिए उनकी बातो को—उनके विचारो को योही, टालकर, मजाक उडाकर, नही भुलाया जा सकता। 'सत्य', 'अहिसा' के सैद्धान्तिक पहलू को छोड दीजिए, इसपर तो इतना लिखा है और अपने जीवन मे इतना कर दिखाया है कि देखने और चलने-वाला चाहिए। जनता भी, सर्वोदय (काग्रेस की आज की भाषा मे—समाजवादी रचना), पचायती राज, सहकारिता, शिक्षा-विधि, ग्राम-उद्योग आदि कोई व्यावहारिक प्रश्न ऐसा नही छोडा है, जिसपर उनकी दृष्टि बहुत दूर तक न गई हो और उन्होने इनपर कुछ-न-कुछ प्रकाश न डाला हो। हम स्वतत्र रूप से चलने और सोचने के लिए स्वतत्र है। इसपर कोई आपत्ति

नही उठाता। पर बापू जो-कुछ कह गए हैं, उसपर मनन और चिन्तन किये बिना, उसका प्रयोग किये बिना, कोई चलना चाहे तो वह अविचारी जरूर कहा जायगा। इसलिए मेरा नम्र निवेदन उन सब राजनैतिक पुरुषो से, समाजवादी सज्जनो से, जो जनतन्त्र के हामी हैं और समाजवाद को भारत मे वास्तविक रूप मे लाना चाहते हैं, वे बापू के ग्रन्थो, लेखो और विचारो को अवश्य पढे और उनके प्रयोग करने का प्रयत्न करे।

'मेरे हृदय-देव' के नाम से जो पुस्तक आज मैं पाठको को भेट कर रहा हू—वह इस सारी आवश्यकता को पूरा कर देगी—यह दावा तो हर्गिज नही किया जा सकता। उसके लिए तो पाठको को नवजीवन कार्यालय और सस्ता साहित्य मण्डल से प्रकाशित बापू के तथा बापू-संबधी भिन्न-भिन्न ग्रथो को पढना चाहिए तथा विनोबा का सर्वोदय साहित्य देखना चाहिए। इस पुस्तक मे तो मैंने बापू की महिमा मे समय-समय पर जो कुछ गद्य-पद्य रूप मे लिखा है, उन सबका सग्रह एक जगह कर दिया है। मुझे भी बापू के चरणो मे बैठकर कुछ सीखने का अवसर मिला है, उसके बाद भी उन्हीका बताया मार्ग मुझे श्रेयस्कर और व्यावहारिक मालूम होता है। बारह-पन्द्रह साल के प्रशासन के अनुभव के बाद भी मैं यह कहने का साहस करता हू कि बापू के पथ को छोडकर हममे से जो प्रशासन या समाज की रचना या सचालन करना चाहते हैं, वे अधेरे मे ही टटोल रहे हैं। यहा अवसर नही है कि मैं इनपर विस्तार से चर्चा करू। पर मेरी यह धारणा अवश्य है। मैं इस प्रयास को सफल मान लूगा—यदि इसे पढने के बाद बापू के विचारो और योजनाओ को अधिक जानने की उत्सुकता पाठको के मन मे जाग्रत हो जाय। यदि यह नही हुआ तो मुझे इतना निश्चित है कि इसे पढकर पाठक बापू की कुछ झलक, कुछ झाकी, कुछ दर्शन पाने का पुण्य अवश्य प्राप्त करेंगे।

—हरिभाऊ उपाध्याय

गांधी-जयंती
१९६५

सूची

मेरे हृदय-देव

मेरे हृदय-देव

'मेरे हृदयदेव' ! मेरे यह शब्द ही इस वात को वतलाने के लिए काफी है कि पूज्य वापूजी के नजदीक मैने अपने लिए कौन-सा स्थान तजवीज किया है। एक ओर 'अन्ध-श्रद्धा' और दूसरी ओर 'अन्ध-अश्रद्धा' के इस आक्षेप-काल मे मेरी स्थिति पर यदि कुछ मित्र आपत्ति करे, मेरे प्रति दया दिखावे, तो आश्चर्य की वात नही; क्योकि ईश्वर, भक्ति, श्रद्धा, धर्म, अध्यात्म आदि प्राचीन शब्दो पर, अपने तपस्वी पूर्वजो के परिश्रम फल पर कटाक्ष करने का, उनका उपहास करने का मार्ग कुछ लोगो ने अपने लिए निष्कटक मान लिया है। वे यह समझते है कि श्रद्धा और बुद्धि की शत्रुता है और अपने को बुद्धिमानो की श्रेणी मे मानने के कारण बुद्धि का अपमान या तिरस्कार किये विना वे श्रद्धावान नही हो सकते। मै बुद्धिमान होने का दावा नही कर सकता। मुझे तो 'सेवक' कहलाने मे अपना जीवन सार्थक मालूम होता है और जव मै देखता हूं कि एक ओर स्व० देशवन्धुदास, कार्य-कुशल स्व० लाला लाजपतराय, त्यागमूर्त्ति स्व० मोतीलाल नेहरू, व्यवहार-बुद्धि केलकर जैसे गरम राजनीति-वीर और भारत-भूषण मालवीयजी, माननीय शास्त्रीजी जैसे मधुर और नम्र राजनीति-प्रिय तथा दूसरी ओर कवि-सम्राट रवीन्द्र, विज्ञानाचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे स्वदेशी नर-रत्न और होरस, रोम्यारोला, सनयातसेन, वाल्स, एण्ड्रूज आदि की असामान्य देश-

भक्ति, सच्चाई, पवित्रता, तपस्या और माहात्म्य का लोहा मानते है और जिह्वा मुक्तकठ से कहती है कि महात्मा गाधी उन उज्ज्वल आत्माओ मे से है, जो हजारो वरसो मे कभी-कभी ससार मे अवतीर्ण होती है। जव उन्हे आज सारी दुनिया मे अनेकाश मे उनकी टक्कर का महापुरुष दूसरा नही दिखाई देता तव पाठको को, यदि मुझ-जैसा मामूली प्राणी उन्हे अपने हृदय का देव मानकर उनकी पूजा करे, उनका अनुयायी होने का प्रयत्न करे, उनके दर्शन से अपनी आत्मा को सजीव, उपदेश से उच्च और सत्सग से पवित्र होती हुई माने, तो क्या आपको इस पर आश्चर्य होगा? और जव मै अपनी आखो से देखता हू कि अनेक वादग्रस्त विषयो और लड़ाइयो मे रत रहते हुए भी उस पवित्र आत्मा का आज सारे भूमण्डल मे एक भी शत्रु नही है, जिसके तनिक ही सहवास और प्रयास से मैने शरावियो को शराव छोड़ते हुए, व्यभिचारियो को पत्नीव्रत की रक्षा करते हुए, चोरो, डाकुओ और कुचालियो को सज्जन वनते हुए देखा, जिसके प्रोत्साहन से कायरो को वीरता के साथ हँसते हुए, कष्ट-सहन करते हुए देखा है, दुर्व्यसनो मे लिप्त, भोगविलास मे चूर, धन-यौवन के गुलाम लोगो को धार्मिक और पवित्र होते हुए देखा है, नास्तिको को आस्तिक, हिसावादियो को अहिसा-व्रती, निराशावादियो को आशावादी, फैशनेवल लोगो को सीधा-सादा, रहन-सहन-प्रिय होते देखा है, जिसको मै मामूली आदमियो मे से नेताओ का निर्माण करते हुए देख रहा हू, विरोधी भावो, मतो और जातियो को एकता के सूत्र मे वाधते हुए—उनका सामजस्य करते हुए देखता हू, एक गिरी हुई जाति को मनुष्यत्व के पद पर ऊंची उठाते हुए देखता हू, मै उसकी मूर्त्ति को अपने हृदय मे रखू

तो कौन-सी बुराई है? जब मै देखता हू कि वह वीर की तरह अन्यायो, अत्याचारो और पापो तथा उनके हिमायतियो से खम ठोककर जी-जान से लडता है और आप हमको लडाता है और दूसरी ओर एक माता की तरह उन अज्ञ, अज्ञान, रोगी भाइयो पर प्रेम की वर्षा करता है, हमे प्रेम का पाठ पढाता है और सेवा के पारितोषिक-रूप जालिमो के जेलखानो को पवित्र बनाता हुआ दो हजार वर्ष पहले ईसा का स्थान प्राप्त करता है, तब यदि मै उसे भावी सन्तति का राम-कृष्ण मानू तो क्या बेजा? बुद्ध और ईसा-मसीह तो लोग उसे आज भी मानने की तैयारी कर रहे है।

पूज्य बापूजी मेरे ही हृदय-देव नही, सच पूछिये तो करोडो भारतवासियो के हृदय-देव है। कौन ऐसा भारतीय हृदय है, जहा उनके लिए स्थान नही, जिसे उन्होने अपना घर न समझा हो? भारत की राज्य-लक्ष्मी चली गई, उन्होने उसे आजादी का स्वाद चखाया, स्वराज्य का राज्य-मार्ग दिखाया, भारत फाकेकशी की नुमाइश हो रहा था. उन्होने उसे खादी पर फिदा होने की नसीहत दी। भारत विदेशी सभ्यता का गुलाम होकर भारतीयता की जड काट रहा था, अपनी बपौती को पश्चिमी महासागर मे डुबो रहा था उन्होने उसे स्वाभिमान, स्वाव-लम्बन का पाठ पढाया, सच्चे स्वदेशी-धर्म की दीक्षा दी। पशुबल के अधीन भारत पशुधर्म को आदर्श मानकर पशुत्व की ओर कदम बढा रहा था. उन्होने अहिंसा के उपदेश के द्वारा उसे मानव-रूप देकर उसे मनुष्यता की ओर फेरा। भारत नास्तिक-कता के रग मे रगा हुआ निराशा के मूर्च्छा-विष को पी रहा था, उन्होने धर्म की महिमा की प्रतिष्ठा कर आशावाद का सन्देश

उसे सुनाया। भारत को आपसी फूट, भेदभाव और अस्पृश्यता के रोगो से मुक्त होने की रसायन दी। भारत भय, असत्य, कायरता का शिकार हो रहा था, उन्होंने उसे निर्भयता, सत्य और वीरता के शस्त्रास्त्र प्रदान किये।

१९२२

अंगरखा, कन्धे पर दुपट्टा, कमर मे धोती और नगे पाववाली यह साधु-मूर्त्ति आज भी मेरी आखो मे नाचा करती है। हिंदू-सभा मे, और वाद में काग्रेस के अधिवेशन मे जो उनके दस-पाच चुने हुए वाक्य मेरे कानो मे पडे और जिस गम्भीरता और शान्ति के साथ उनके मुह से प्रकट हुए, उससे उनके आत्म-तेज और आत्मविश्वास का सिक्का मेरे हृदय पर जम गया। तव से 'लोकमान्य' के साथ-साथ 'कर्मवीर' ने भी मेरे हृदय के एक कोने पर अधिकार कर लिया।

इसके वाद ही महात्माजी ने चम्पारन मे अपने काम का श्रीगणेश किया। भारत के राष्ट्रीय इतिहास मे शायद पहली ही वार एक भारतीय वीर ने सरकारी आज्ञा का सविनय निरादर किया और सरकार को अपनी आज्ञा वापस लेनी पडी। निलहे गोरो के अत्याचारो से विहार की प्रजा को वचाने के उद्देश्य से महात्माजी के प्रयत्न के फल-स्वरूप कमीशन की स्थापना हो चुकी थी और महात्माजी किसी जरूरी काम से पजाव मेल द्वारा दिल्ली होते हुए गुजरात जा रहे थे। मै जुही-कानपुर मे रहता था, खवर पाते ही स्टेशन पर दौडा गया। सेकड क्लास के एक दरवाजे के ऊपर एक नगे सिर और नगे पैरवाली मूर्त्ति को देखा। वदन पर एक मोटा कुरता, कमर मे मोटी-छोटी धोती। उस समय उनके चेहरे पर जो निश्चय और तपस्या का तेज दिखाई दिया, वही दर्शको के लिए चम्पारन के उज्ज्वल भविष्य का पर्याप्त सूचक था। फिर शब्दो द्वारा जव उन्होने अपना कठोर निश्चय प्रकट किया कि या तो निलहो के अत्याचारो से प्रजा की रक्षा होगी या ये हड्डिया चम्पारन मे रह जायगी, तव तो मेरी आखो मे आसू भर आये। इतने निर्भय और नि शक

वचन अपने कानो से सुनने का मेरा वह पहला ही अवसर था।

कुछ ही देर मे टिकट-कलेक्टर टिकट देखने आया। गाधी-जी ने अपने कुरते की जेव मे हाथ डाला। लटकती हुई जेब सूत की एक महीन डोरी से बधी हुई थी। यही शायद उनका 'मनी-बैग' था। उसमे से जव उन्होने टिकट निकालकर दिया तव टिकटवाबू भी एक देहाती आदमी को सेकंड क्लास मे सवार देख उनका मुह ताकने लगा। दर्शको के चेहरे विस्मय और सादगी के प्रभाव से खिल उठे।

इस प्रकार लखनऊ मे 'कर्मवीर' के नाम से प्रसिद्ध और कानपुर मे प्रत्यक्ष 'दृढव्रत' गाधी के दर्शन करके हृदय ने मन-ही-मन अपनी श्रद्धा की पुष्पाजलि उनके चरणो पर चढाई।

१९१८ की फरवरी मे इन्दौर मे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का आठवा अधिवेशन होनेवाला था। मालवा मेरी जन्मभूमि और हिदी मेरी मातृ-भाषा। महात्माजी के पुनर्दर्शन की अभि-लाषा और सुयोग। मेरे घर मे सम्मेलन का आयोजन हो और मै मेहमान बनकर जाऊ ! इस विचार से मुझे मन-ही-मन शर्म मालूम हुआ करती थी। पर कौटुम्बिक तथा दूसरी आपदाओ का पहाड मेरे सिर पर खड़ा था। आखिर ठीक समय पर जा पहुचा। इसीको मैने अपना वडा भाग्य माना। इस बीच महात्मा-जी 'महात्मा गाधी' हो गए थे। खेडा जिले के सत्याग्रह की ओर सारे देश की आखे लग रही थी। वह धीरे-धीरे विविध प्रकार से अपने पराक्रम और पुरुषार्थ का लगातार परिचय देते जाते थे। इधर मै भी कुछ अश मे सांसारिक विपदाओ और कुछ अश में राष्ट्र-कर्तव्य की प्रेरणा से कौटुम्बिक कर्तव्यो से धीरे-धीरे उदा-

सीन होता हुआ महात्माजी की ओर अधिकाधिक खिचता जाता था। इन्दौर मे मैंने जिस रूप मे महात्माजी का दर्शन किया वह मेरे लिए एकदम नवीन था।

महात्माजी खासे कैदी बने हुए थे, कैदी का-सा वेश पहने हुए थे। उनका यही पहनावा आज भारत का राष्ट्रीय पहनावा हो गया है। चेहरा शरीर की दुर्बलता की गवाही दे रहा था, पर उत्साह और तेज-तर्रारी देखकर लोग दग रह जाते थे। खेडा के सत्याग्रह का काम अधूरा छोडकर वह इन्दौर आये थे। उनकी वदौलत यह सम्मेलन अजरामर हो गया। सम्मेलन के अधिवेशन, विषय-निर्वाचिनी समिति, सार्वजनिक भाषण तथा इतर कार्यों मे दिनरात व्यस्त रहते हुए भी उनके शरीर और दिमाग को थकते हुए किसीने नही देखा। विषय-निर्वाचिनी समिति मे जव मद्रास प्रान्त मे हिन्दी-प्रचार के सम्वन्ध मे विचार हो रहा था तव मैंने देखा कि महात्माजी की आकलन-शक्ति अद्भुत है। थोडे ही शब्दो और हाव-भाव से मन का आशय समझने में वह वडे सिद्धहस्त थे। वडे-वडे विद्वान कार्यकर्ता और पदवीधर लोग वहा उपस्थित थे। पर ऐसा मालूम होता था कि सव महात्माजी के सामने अपने विचार प्रकट करते हुए झेपते या सकुचाते थे और महात्माजी मानो किसी अन्तर्यामी की तरह एक दृष्टिपात मे उनके हृदय का भाव समझकर नीचे देखने लग जाते थे। उस समय उनकी दृष्टि मे जो भेदकता मैंने देखी उसने मुझे उनके महापुरुष होने के विषय मे निश्चय करा दिया और अन्तिम दिन उन्होने जो उपसहारात्मक भाषण किया, उसने तो सारे उपस्थित जनो का मन हर लिया और प्राय प्रत्येक के हृदय मे उनकी मूर्त्ति की प्रतिष्ठा हो गई।

अब मै महात्माजी के भाषण आदि बड़े चाव से पढने लगा और उनके कार्यों और गतिविधि का अध्ययन-मनन भी करने लगा। रौलट-एक्ट के आन्दोलन ने महात्माजी को भारतीय राजनीति के बीच मैदान मे लाकर खडा कर दिया। लोकमान्य की मृत्यु के बाद तो महात्माजी ही देश के एकमात्र नेता रह गए। लोकमान्य का स्थूल शरीर यद्यपि आज दुनिया मे नही है तथापि उनकी आत्मा का तेज तो आज भी मुझे महात्माजी की आत्मा मे प्रतिबिम्बित दिखाई देता है। अतएव तबसे महात्माजी मेरे लिए दोहरे पूज्य और वन्दनीय हो गए। अमृतसर की महासभा के तिलक-गाधी मतभेद ने और पीछे से कलकत्ता-काग्रेस के असहयोग प्रस्ताव-सम्बन्धी वाद-विवाद ने 'शठे शाठ्य समाचरेत्' तथा 'शठ प्रत्यपि सत्यम्' दोनो सिद्धातो के तुलनात्मक अध्ययन की ओर मेरा ध्यान खीचा। पहले मै भी 'हन्ते को हनिए, पाप दोष ना गनिए' के न्याय का कायल था, लेकिन विचार, मनन और अध्ययन ने मुझे—

> अक्रोधेन जयेत् क्रोधं असाधुं साधुना जयेत्।
> जयेत् कदर्यं दानेन सत्येन अनृतं जयेत्॥

की सत्यता, नित्यता, उच्चता, अजेयता और सात्त्विकता का कायल कर दिया।

'हिन्दी-नवजीवन' निकालने के सम्बन्ध मे जून १९२१ के अन्त मे मै बम्बई गया। महात्माजी और सेठ जमनालालजी बजाज के ही द्वारा उसके सफल होने की आशा थी। इस बार मुझे महात्माजी के जीवन के अध्ययन का प्रत्यक्ष मौका मिला। बम्बई मे मै जिस दिन 'मणि भवन' मे दर्शन के लिए गया,

महात्माजी बम्बई के कितने ही नगर-सेठो के साथ विदेशी कपड़े के वहिष्कार के सम्बन्ध मे चर्चा कर रहे थे। तिलक-स्वराज्य कोष-सम्बन्धी उनकी विजय ने प्रतिपक्षियो को भी चकित कर दिया था। इधर, महात्माजी तो स्वराज्य का किला सर करने के लिए एक के वाद दूसरा कदम धडाके से आगे वढा रहे थे, उधर, ऐसे समय, इग्लैड से आये हुए एक साहव, एक मेम और एक गुजराती साहव मेरी तरह, महात्माजी के दर्शन के लिए उत्सुक बैठे थे। कोई दो घटे वाद महात्माजी चर्चा खतम करके वाहर आये। रात के ९ वज गए थे। शहर के भिन्न-भिन्न विभागो मे कोई तीन-चार सभाए होनेवाली थी। सबमे महात्माजी को पधारना था। टेलीफोन की घटी वार-वार आती थी—जवाव मिलता था—अभी काम खतम करके आते ही है। वाहर आते ही महात्माजी ने कुरता और टोपी मागी। इधर खडे-ही-खडे उन 'साहव' से वाते होने लगी। गुजराती साहव ने कहा—"आपको याद होगा, जव आप लन्दन मे बैरिस्टरी का अध्ययन कर रहे थे तव सर मचरजी भावनगरी के सभापतित्व मे आपका एक भाषण हुआ था। उसमे आपने यह प्रतिपादन किया था कि इग्लैड मे रहनेवाले गुजरातियो को यहा गुजराती मे नही, अग्रेजी मे ही अपना काम-काज करना चाहिए। उस सभा का मत्री मै ही था।" इसपर गाधीजी ने आश्चर्य-भरी आखो से हँसते हुए उनकी ओर देखा और पूछा—"क्या यह कहा था कि अग्रेजी मे ही कामकाज करना चाहिए?" गुजराती साहव ने निधडक कह दिया—"जी हा।" फिर गाधीजी ने पूछा, "क्या अग्रेजी मे ही?" उत्तर मिला "जी हा।" तव महात्माजी ने खिल-खिलाकर हँसते हुए निश्चय के स्वर में कहा—"तो फिर

वह कोई दूसरा गाधी होगा। मैने तो जिन्दगी मे किसी गुजराती को यह सलाह नही दी कि अपनी भाषा छोडकर अग्रेजी मे अपना काम-काज करो। हा, एक सभा की वात मुझे खूब याद है। लेकिन उसमे मैने गुजराती मे ही काम-काज करने के लिए कहा था।" सुनते ही गुजराती साहव अपनी भूल समझ गए और लजाते हुए कहा—"जीहा, आप वहुत ठीक कहते है। गुजराती की जगह 'अग्रेजी मे' मेरे मुह से वरावर निकलता गया। वडी भूल हुई—माफ कीजिएगा।"

उस दिन रात को कोई दो वजे तक सभाओ मे महात्माजी को भाषण आदि देने पडे। रोज सुवह से रात के १०-११ वजे तक दर्शन करनेवालो, शका समाधान करनेवालो, सलाह लेनेवालो, प्रचार करनेवालो आदि तरह-तरह के कार्यकर्ताओ का ताता लगा रहता था। सव से वरावर शान्ति और गम्भीरता के साथ महात्माजी वातचीत करते, समझाते और राह वताते। सितम्वर तक वहिष्कार का कार्यक्रम पूरा करने का भार सिर पर था। दिसम्वर तक स्वराज्य स्थापित करने की तैयारी हो रही थी। पर जव-जव मै दर्शन के लिए गया, उन्हे कभी उदास, उद्विग्न या शकित-चित्त नही देखा। 'यग-इण्डिया' और 'नव-जीवन' की सामग्री वरावर मगलवार और गुरुवार तक भेज दी जाती थी। अपने लेख और टिप्पणिया महात्माजी खुद लिखते थे। कितनी ही चिट्ठियो के जवाव भी खुद ही देते थे। उस अवसर पर मुझे महात्माजी की कार्यक्षमता, कार्य-तत्परता, व्यवहार-कुशलता और मोहिनी-शक्ति का जो अनुभव हुआ, वह वरावर वढता ही गया। जुलाई के अन्त में महासमिति (अ० भा० कां०) की वैठक वम्बई में हुई। पहली अगस्त को

विदेशी कपडो की होली का मगलाचरण होनेवाला था। युवराज के स्वागत-वहिष्कार, सितम्वर तक विदेशी कपड़ो का वहिष्कार, ये दो विपय प्रवान-रूप से लोगो की जवान पर थे। प्रत्येक प्रान्त के नेता और प्रसिद्ध कार्यकर्ता उपस्थित हुए थे। खादी के पहनावे मे पहली महासमिति की बैठक वही थी। स्व० लालाजी से लेकर प० मोतीलालजी और श्री केलकर तक के सिर पर खादी टोपी और देशवन्धु, विजयराघवाचार्य से लेकर प्राय सव छोटो-वडो के वदन पर खादी देखकर मेरी आखो मे हर्ष के आसू छलछला आते। जव मै वम्वई गया था तो उन दिनो इक्के-दुक्के के सिर पर वहा गाधी-टोपी दिखाई देती थी। पर एक ही महीने मे एक अगस्त तक वहा लाखो लोगो के सिर पर खादी टोपी चमकने लगी। जिस दिव्य शक्ति का यह प्रभाव था, उसपर मै मन-ही-मन मुग्ध और न्यौछावर हुआ जाता था।

महासमिति मे जव कोई सदस्य महात्माजी के प्रतिकूल वोलने के लिए खडा होता, तव उसकी निर्भयता और साहस को देखकर उनका चेहरा खिल उठता और जव कोई व्यावहारिक दृष्टि को आगे वढाकर उनके तत्त्वज्ञान और आदर्शवाद की वृत्ति पर कटाक्ष करता तव तो वह खिलखिलाकर हँस पडते थे। पर जव कोई उनके पक्ष मे वोलने के लिए उठता तव मानो संकोच से उनका चेहरा गम्भीर हो जाता। उनकी हँसी मुझे प्रतिपक्षी के हृदय पर कब्जा करनेवाली दिखाई देती। उनकी गम्भीरता मे मै अपनी वहुमति का विश्वास और निश्चय देखता। उनके मौन मे मुझे प्रतिपक्षी के प्रति दया-भाव और कभी उसकी भूलो पर उपेक्षा-भाव मालूम होता। उनके प्रत्येक अग-विक्षेप को मै

अर्थहीन नही पाता था। जव नीची निगाह करके वह विरोधियों के आक्षेपो का उत्तर देने लगते, तव ऐसा मालूम होता मानो तूफानी समुद्र मे से कोई होशियार कप्तान अपने वेड़े को सावधानी के साथ, परन्तु निश्चित-रूप से, लक्ष्य की ओर वढ़ाये ले जा रहा है। कभी-कभी कोई वडे जोर के साथ कटाक्ष-वाण फेकता, पर वह वहा जाकर फूल हो जाता। शिष्टता, नम्रता और कुशलता के साथ उनके व्यवहार मे ऐसी दृढता, दुर्दमनीयता और प्रवल वेग दिखाई देता था कि वह सवको वरवस अपनी दिशा मे खीच ले जाता था। वाक्चातुर्य और समय-सूचकता का परिचय उनकी प्रत्येक वात से मिलता था। उनका विनोद भी सारहीन नही, वल्कि सूचक और प्रेरक होता था।

अहमदावाद मे जव-जव मै उनके दर्शन के लिए जाता, तव-तव मै उन्हे भिन्न-भिन्न रूपो मे देखता—वह कभी नेता, कभी राजनीतिज्ञ, कभी सेनापति, कभी लेखक, कभी सम्पादक, कभी पिता, कभी महात्मा और कभी सूतकार दिखाई देते। उनकी आत्मा मे मै भारत की आत्मा को छिपी हुई देखता। कोपीनधारी महात्मा मुझे भारतीय किसानो और मजदूरो के प्रतिनिधि, चरखा कातनेवाले महात्मा, दीन-दुर्वल लोगो के अवलम्व, पेन्सिल से 'यग इडिया' और 'नवजीवन' के लिए लेख लिखनेवाले महात्मा, भारत की सस्कृति के नेता और प्रचारक तथा अपनी जाघ पर से साप को निकल जाने देनेवाले महात्मा मुझे दया-धर्म के अवतार नजर आते। मनु और लक्ष्मी के साथ किल्लोलें करते हुए महात्माजी मुझे वत्सल पिता, और कार्यकर्त्ताओ को इधर-उधर तैनात करते हुए महात्माजी सेनापति दिखाई देते। किसी नवागन्तुक(?) से भवे चढाकर मुस्कराते हुए हँस-हँस कर

बात करनेवाले महात्माजी मुझे 'गुरुदेव' देख पडते और मैं मन-ही-मन कहता :

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाजनशलाकया ।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

अहमदाबाद की काग्रेस के समय महात्माजी को जितना निश्चिन्त, प्रसन्न और प्रफुल्ल देखा उतना पहले कभी नही देखा था, यद्यपि उस समय की स्थिति ऐसी चित्तवृत्ति के ठीक उलटी दिखाई देती थी। वीरो का यह स्वभाव ही होता है कि जब प्रतिकूल परिस्थिति का सामना करना होता है तब उनके हृदय मे अधिक उत्साह और वीरता का सचार हो आता है। इसी तरह साबरमती जेल मे भी उन्हे मैंने प्रसन्न और नि शक देखा।

कुछ लोग महात्माजी को व्यवहार-दृष्टिहीन और एकागी मानते है। पर मेरा यह खयाल है कि जिन्होंने उनके एक ही अग या पक्ष को देखा है वे और क्या कह सकते है ? भिन्न-भिन्न विचार, आचार और स्वभाववाले छोटे-से-छोटे और बडे-से-बडे लोगो को एक दिशा मे कार्य करने के लिए प्रवृत्त कर देने-वाले और फिर भी किसी के प्रभाव से प्रभावान्वित न होनेवाले व्यक्ति को व्यवहार-दृष्टिहीन कहना धृष्टता है। हा, उनकी व्यवहारकुशलता आदर्शमय है, जिसकी कुशलता ने देश मे खुफिया पुलिस को बेकार कर दिया, हज़ारो षड्यत्रकारी लोगो को खुले मैदान काम करने का रास्ता दिखाया, मुसलमानो और हिन्दुओ पर खिलाफत की रक्षा और दोनो पर स्वराज्य की प्राप्ति का भार लाकर रख दिया, उसे कौशलहीन कहना मुझे तो अपने अज्ञान का परिचय देना ही मालूम होता है।

महात्माजी के पास मैंने गुप्त अथवा खानगी वात कोई नही देखी। उनका दीवानखाना हर वक्त हर शख्स के लिए खुला रहता था। हा, दूसरे की खानगी और गुप्त वातो को वह अवश्य हिफाजत से रखते थे और यह सर्वथा उचित भी है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि किसीको कोई खानगी वात उनसे करनी होती तो उन्हे दूसरे कमरे में जाकर वात करनी पडती। उनके साथ के प्रत्येक व्यक्ति के साथ मैंने उनका व्यवहार ऐसा प्रेममय और निर्दोष देखा कि हरएक को यही मालूम होता कि महात्माजी सबसे अधिक प्रेम मुझपर ही करते है। उनका सासारिक जीवन मुझे जल मे कमल की तरह दिखाई देता।

अक्तूबर, १९२२

. ३

तूफ़ान में

नववर सन् १९२४ की वात है। देशवन्धु दास का 'फारवर्ड' पत्र कलकत्ते से निकला था। उसकी शायद पहली सख्या मे कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'फ्रीडम' नामक कविता प्रकाशित हुई थी। कहते है, रविवावू और देशवन्धु साहित्य और धर्म-क्षेत्र मे कुछ समय तक प्रति-स्पर्द्धी रहे। कविता का भाव, 'फारवर्ड' का उपदेश दोनो प्रतिस्पर्द्धियो का विस्मयजनक सम्मेलन, विचारो को उद्दीप्त करने के लिए काफी थे। दिल्ली के समझौते के कारण स्वराज्यदल की हालत नवविवाहित दुलहिन की-सी थी। शुद्धि और सगठन तथा तवलीगवाले अलग जोर मार रहे थे। ऐसी परिस्थिति मे एक मित्र ने 'फारवर्ड' मे प्रकाशित 'फ्रीडम' की ओर ध्यान आकर्षित किया। मैंने पढकर मित्रो से कहा—"मालूम होता है जव महात्माजी जेल से छूट कर आवेंगे तव उन्हे देश मे अनेक विरोधी शक्तियो का सामना करना पडेगा। क्या राजनीति, क्या धर्म, क्या सस्कृति, तीनो क्षेत्रो मे वह अपना विरोध पावेगे। राजनैतिक क्षेत्र मे स्वराज्य दल का विरोध स्पष्ट है। धार्मिक क्षेत्र मे शुद्धि-सगठन और तवलीग उनके कार्य को, हिन्दू-मुस्लिम एकता को मटियामेट कर रहे है। सास्कृतिक क्षेत्र मे रविवावू कभी-कभी अपनी निषेधात्मक आवाज उठाते रहते है। तीनो क्षेत्रो के लोग अपनी-अपनी समझ के अनुसार यह मानते है कि महात्माजी के अमुक

कार्यो या विचारो से देश को हानि है। जबतक वे ऐसा मानते है तबतक उनका यह कर्त्तव्य ही है कि वे उनका विरोध करे—प्रतिकार करे। बहुत सभव है, जब महात्माजी जेल से निकले तब उन्हे तीनो शक्तियो का सम्मिलित विरोध दिखाई दे। आर्य-समाजी और सनातनी एक-दूसरे के विरोधी है। पर जबतक वे यह मानते रहेगे कि महात्माजी ने मुसलमानो को सिर चढा लिया है, तबतक वे महात्माजी की प्रवृत्ति के विरोध मे एक हो जायगे और रहेगे। कट्टर हिन्दू और कट्टर मुसलमान, हिन्दू पण्डित और मुसलमान मौलवी या उलमा जबतक यह खास खयाल रखते रहेगे कि महात्माजी तो दोनो धर्मो को एक बनाकर एक नया ही हिन्दू या मुसलमान धर्म चलाना चाहते है, तबतक दोनो आपस मे परस्पर विरोधी होते हुए भी एक हो जायगे। महात्माजी और देशबन्धु का समझौता सास्कृतिक और राजनैतिक क्षेत्र के सगठित विरोध का सूचक मालूम होता है। महात्माजी जेल से छूटते ही अपनी नाव को तूफान मे पडा पावेगे।"

जून के दूसरे सप्ताह मे एक मित्र ने आकर कहा—"उपाध्यायजी, मै आपको भविष्यवादी कहूगा। आपकी यह भविष्यवाणी सच

लोगो को परेशान कर रहा था। महात्माजी ने अपने भिन्न-भिन्न वक्तव्यो और लेखो के द्वारा उसका स्फोट करके वायु-मडल को साफ करने का प्रयत्न शुरू किया है। बुखार के कीटाणु जबतक अन्दर दबे रहते हैं, तबतक आमतौर पर लोगो को बुखार का अस्तित्व नही दिखाई देता और जब बुखार आ जाता है, तब वे समझते है हम बीमार हुए। वास्तव मे देखा जाय तो बुखार का ऊपर आ जाना नजदीकी आरोग्य का चिह्न है। जबतक वह भीतर दबा रहता है, तबतक वह अधिक भयंकर होता है। इस तूफान का भी यह हाल है। जब बुखार १०३-४ डिग्री हो जाता है, तब रोगी गाफिल होने लगता है और घर के लोग घबडा जाते है। पर वैद्य बेखटके दवाओ का प्रयोग करता जाता है। यही हाल महात्माजी का हम देख रहे है। आर्य समाजियो और स्वराजियो के तरह-तरह के विरोध, आरोप और कटाक्षो की रिपोर्टे लोग उनके पास ले जाते है और वह "अ , इसमे कुछ नही, मैंने जो कुछ लिखा है, बहुत सोच-समझकर और प्रमाण-पूर्वक लिखा है, कोलाहल की चिन्ता नही। यह तो जल्द ही शान्त हो जायगा।" सारे देश के अखबार और सभा-समाज चिल्ल-पो मचा रहे है और उनके हिसाब से मानो कुछ है ही नही। उन्हे इस घुआधार मे भविष्य की उज्ज्वल किरणे आती हुई दिखाई देती हैं। वह शान्त और स्थिरभाव से अपनी नैया को गन्तव्य दिशा की ओर खेते जा रहे है। यह तूफान इस बात को साफ-साफ दिखला देगा कि कौन कहा और कितने पानी में है। इसमे असली और नकली, कच्चे और पक्के, अनुकूल और प्रतिकूल का पता लग जायगा। जबतक कोई नेता इन बातो को साफ-साफ न जान ले, तबतक उसके लिए

कुछ भी काम करना असभव है। चाशनी मे उफान मेल को दूर करने के लिए उठाया जाता है। भारतीय गगन-मडल इन दिनो इतना मेघाच्छन्न हो गया है कि कार्येच्छु लोगो का जीवन मद होता जाता है। यह आवश्यक था कि या तो जलद-पटल विखर जाय या वरस कर आकाश-मण्डल को निर्मल कर दे। महात्मा-जी के आ जाने से अब हमे थोडे ही दिनो मे भुवन-भास्कर की चेतनामय किरणो के दिव्य दर्शन की आशा करनी चाहिए।

१९२३

४

पराजय का वीर

पराजय! तू किस बुरी घडी मे पैदा हुआ! इतिहास तेरा गर्व नही करता, कवि तुझ पर न्योछावर नही होते, राजा तेरी ओर आख उठाकर नही देखते, कोश तेरा गुण-गान नही करते, विद्वान तुझ पर लट्टू नही होते, सर्वसाधारण तुझे हेय दृष्टि से देखते है, तुझे पतित-नीच-निकम्मा समझते है। दुनिया मे कौन ऐसा है, जो तेरा मुह देखना चाहता हो?

दुनिया समझदारो की बपौती नही, उसमे पागल भी है, मतवाले भी है। दुनिया जय को पूजती है, ये पागल पराजय को पूजते है। दुनिया जय-जयकार मे मस्त है, ये पराजय के गीत गाते है। इतिहास जय को पहचानता है, जय के वीरो को अमर बनाने की कोशिश करता है, ये पगले पराजय को खोजते है, पराजय के वीर को अपने हृदय की मूर्त्ति बनाकर उसके चरण चूमते है।

ससार क्या है? ससार का विकास क्या है? जय और पराजय, जय का बोलबाला, पराजय का मुहकाला। जय हमे इतना प्रिय क्यो है? पराजय मे इतनी बदबू क्यो आती है? क्या विजय दुनिया के भले के ही लिए होती है, हुई है? क्या पराजय पर अत्याचार, अन्याय नही होते? क्या जय अत्याचारी, अभिमानी नही होता? क्या पराजय भला, पाप-भीरु, निर्दोप नही होता? फिर क्यो हम जय को पूजते है और

पराजय से घृणा करते है? जय का प्रताप हमारी आखो को चौधिया देता है और पराजय की आत्मग्लानि से हम चौक उठते है? जय का उन्माद और पराजय की शालीनता, जय का गरूर और पराजय की नम्रता को उनके असली रूप मे हम नही देख पाते। जय के हर्षनाद मे पराजय की हाय को हम भूल जाते है। जय के तेज मे मनुष्य की मूलभूत दुर्बलताए छिप जाती है, उसका सच्चा वल, पौरुष, तेज और पराक्रम तो पराजय की मलिनता मे ही दमकता है। जय नही, पराजय मे मनुष्य की सच्ची कसौटी होती है।

दुनिया के 'जय' और 'पराजय' शब्द धोखा देनेवाले है, भटकानेवाले है। राम ने रावण को मारा। दुनिया ने उन्हे विजयी कहा। विजयादशमी राम के विजय की स्मारक मानी जाती है। पर पागलो का रास्ता दुनिया से जुदा है। यह विजयी राम उन्हे उतना अपना नही मालूम होता, जितना सीता को छोड देने के वाद वियोगी, व्यथित राम। विजयी नही, यह हारा हुआ राम उनका राम है। सिहासन पर अभिषेक करानेवाले, छत्र-चवर से मण्डित, हनुमान-सेवित राम उनकी नजरो मे उतने ऊचे नही उठे, जितने सीता की खोज मे वन-वन भटकने और रोनेवाले राम।

दुनिया कहती है, रावण को मारकर राम विजयी हुए, ये पागल कहते है सीता को खोकर राम पराजित हुए। लोग कहते है, राम विजयी वीर है, ये दीवाने कहते है, वह पराजय के वीर है।

दुनिया पाण्डवो को अवतक विजयी मानती चली आ रही है, पर महाभारत के मार्मिक रचयिता ध्वनित करते है कि

पाण्डव विजयी होकर भी पराजित रहे। महाभारत का पठन वही तक उत्साहप्रद और स्फूर्तिदायक मालूम होता है, जवतक हम पराजित पाण्डवो के साथ वनो मे घूमते-फिरते है। परन्तु ज्यो-ज्यो पाण्डव उस पराजय को पराभूत करते जाते है, ज्यो-ज्यो वे अपने वनवास और अज्ञातवास से निकलकर अपनी विजय की ओर वढते जाते है, त्यो-त्यो हमारे दिल पर एक भयानक छाया गिरती जाती है। हृदय विषण्ण होता जाता है और वह चाहता है कि क्या ही अच्छा होता, यदि वेदव्यास यही कही महाभारत को समाप्त कर देते। विजय के बाद अर्जुन हतप्रभ और हतवल हो गए। चोरो से अपने आश्रितो की रक्षा न कर सके, युधिष्ठिर सवके सहार पर दुखी हो हिमालय मे गलने चले गए, सारे कौरव, पाण्डव और यादव-वश का नाश अपनी आखो से देखकर उदासीन कृष्ण एक व्याध के तीर से तिरोहित हुए—यह जय है या पराजय ? दुनिया इसे जय कहती हो, पागल इस जय को पराजय की पेशवन्दी कहते है।

दुनिया ईसा को पराजित मानती थी। वह दीवाना, मत-वाला था। उसका एक उद्देश्य था, धुन थी, लगन थी। दुनिया ने उसे सताया, काटो का ताज पहनाया, अन्त मे सूली पर चढा दिया। वह चढ गया। उसका चेहरा खिला हुआ था—पर हृदय मे एक दर्द था, एक आह थी! दुनिया ने उसके लहूलुहान शव को देखकर कहा—यह गया, मिट गया! पर उस पराजय के पुतले की करुणाभरी चितवन, विशाल मुखमण्डल की दयामयी विषण्ण आभा उसकी विजय की ज्योति छिटका रही थी। हम देखते है कि इस तरह पराजित होकर भी आज वह विजयी है।

मीरा को उसके लोग वावली, वहकी हुई और विगड़ी हुई

मानते थे। उसे डराने को डिबिया मे साप भेजा और अन्त को जहर का प्याला पिलाया गया। पर पराजय के मानवी-प्रहार बेकार हुए। वह जीती-जागती विजयिनी हुई। दुनिया के पराजय की नाप गलत साबित हुई।

और दयानन्द के लिए कल तक क्या शास्त्री लोग 'पराजित-पराजित' नही चिल्लाते थे? क्या उसे हराने मे, सताने मे कोई कसर की गई? जहर ने उसके शरीर को भस्म कर दिया, लोगो ने उस समय चाहे समझा भी हो कि दयानन्द खत्म हो गया, पर उसकी भस्म उड-उडकर विजय-घोष कर रही थी—'मै किसी को कैद कराने नही, दुनिया को मुक्त कराने आया हू।' हम देखते है कि 'धर्म को डुबोनेवाला' वह दयानन्द आज घर-घर में विजयी है।

इसी तरह गाधी आज पराजित है। लोग कहते है, गांधी हो लिया। असहयोग का विजयी गाधी अब दुनिया मे नही है। वह चिल्लाता है, लोग मुह फेर लेते है। वह रोता है, लोग हँस देते है। वह कातता है, लोग मुह बना देते है। लोग तिरस्कार करते है, उपहास करते है, वह खिल-खिलाकर हँसता रहता है। वे कहते है, गाधी हार गया, हथियार रख दिए, मैदान से भाग गया। वह अपने पथ पर अटल है, तीर की तरह अपने निशानो पर चला जा रहा है। लोग कहते है—वह भूला हुआ है, वह अपनी धुन मे मस्त है। लोग विजय को प्रणाम करने के लिए लालायित है, वह पराजय का वीर बना हुआ है। लोग विजय के वीर की खोज मे है। यह पराजय का वीर पराजय मे विजय को देख रहा है। लोग उदास है, चिढे हुए है, प्रकृति स्तब्ध है, हवा बद है। वह वैरागी दूर एक ऊचे टीले पर अपनी धूनी

रमाये हुए मगन बैठा है। लोग पराजय से भयभीत होकर हताश-से हो रहे है। वह दूर विजय की किरणो को आता हुआ देख रहा है, वह जय मे भी वीर था, आज पराजय मे भी वह वीर चमक रहा है। असहयोग के वीर गाधी ने दुनिया को चकाचौध मे डाल दिया था। लोग कहते थे, गाधी विजयी हुआ ही चाहता है। वह कहता था——नही, अभी देर है। विजय इतनी सस्ती नही हुआ करती। जय के नारो मे गाधी का स्वाभाविक तेज और ओज छिप जाता था। आज पराजय की बौछार और फटकार मे वह अपना असली जौहर दिखा रहा है। यो देखा जाय तो आज का यह पराजित गाधी दुनिया की दृष्टि मे नगण्य है, दुनिया उस जय के गाधी को पूजती थी, पर ये मुट्ठी-भर दीवाने तो इस पराजय के गाधी पर कुरबान है, विजयी गाधी नही, प्रतापी गाधी नही, साधु गाधी, दीन-दुखियो के लिए रोने और मरनेवाला दुखी, दयामय गाधी उनके हृदय का अधीश्वर है। दुनिया ने जिसे हरा दिया, हारा हुआ कहकर जिसे कोने मे फेक दिया, वही इनका हृदय-देव है, वही इनका तारनहार है। विजयी और प्रतापी गाधी को चाहनेवाले आज दुनिया मे चाहे ज्यादा हो, पर वे दिन-दिन कम होते जायगे और यह सन्त व्यथित गाधी तो प्रकृति के कण-कण मे व्याप्त होता हुआ सदा अमर रहेगा और सारी जनता के द्वारा पूजित होगा। दुनिया की नज़र मे गाधी विजय के दिनो मे जितना चमका था, वास्तव मे उससे कही अधिक स्वच्छता, तेजस्विता के साथ आज, पराजय के युग मे, वह चमक रहा है। विजय के वीर से अधिक शोभायमान आज यह पराजय का वीर है।

सितम्बर, १९२७

: ५ :

अमरता की गोद में

लडके नाटक का खेल दिखा रहे थे। महात्माजी अपना चर्खा कात रहे थे। मैने देखा, महात्माजी के चेहरे पर पीलापन छा रहा था। विद्यापीठ से आश्रम को वह इन एक-दो दिनो मे दो-तीन वार आते-जाते थे। आश्रम के विद्यार्थियो ने अपने विद्या-मन्दिर के वार्पिकोत्सव का आयोजन किया था। शायद उसी दिन सुवह कुछ देर हो जाने से महात्माजी ने कुछ दौडकर भी समय पर पहुचने की कोशिश की थी। सुवह के कार्य-क्रम मे कुछ देर तक धूप मे भी बैठे रहे। इधर काग्रेस से लौटने के वाद से दूध लेना वन्द कर दिया था—वादाम और नारियल का दूध वनाकर पीते थे। इस वात का प्रयोग, बुढापे मे शुरू कर दिया था कि विना दूध के भी मनुष्य रह सकता है और दूध का गुण देनेवाले दूसरे पदार्थ भी है। वह शायद यह समझते है कि 'और वातो मे तो मैने अपना सन्देश दे दिया, व्यवहार-विधि भी वहुत-कुछ वता दी, अव एक काम रह जाता है, इसको भी करता जाऊ।' इस लोभ मे दूध वन्द कर दिया था, खुराक कम लेते थे, वजन कम होता जाता था, शरीर दुवला पडता जाता था। इधर गुजरात-विद्यापीठ की पुनर्रचना की धुन मे मन पर काफी परिश्रम का वोझ पड रहा था। फिर आश्रम के उत्सव मे आने की दौड-धूप ! उस पीलेपन मे इतना इतिहास छिपा हुआ था। जमनालालजी ने भी देखा कि वापू कुछ उदास

मालूम होते है। उन्होने एकाध ऐसी वात छेडी, जिससे हँसी आवे। पर महात्माजी हँसे नही। थोडी ही देर मे उन्होने चर्खा कातना वन्द कर दिया, एक विद्यार्थी तार लपेटने लगा। सब लोगो का ध्यान नाटक की ओर लगा हुआ था। एकाएक मैंने देखा कि महात्माजी मीराबहन के कधे का सहारा लेकर उठ रहे है। मुझे आश्चर्य हुआ कि यह क्या ? मैंने सोचा कि बुढापा है, फिर इधर कमज़ोरी ज्यादा आ गई है। उठते समय सहारा लेने की ज़रूरत पड गई हो। मीरावहन एक ही दो कदम आगे वढी होगी कि पैर लटक गए, शरीर का सारा बोझ मीराबहन पर आ गया। जमनालालजी ने मुझे सचेत किया—फिट आ गया, पैर सम्हाल लो। मै झपटा और लटकते हुए पैरो को सहारा दिया। और भाई भी दौड पडे और सबने महात्माजी को हाथो पर सम्हाल रखा। लडको का खेल वन्द हो गया—सन्नाटा छा गया। महात्माजी का सारा शरीर पीला पड गया। आखे खिच आईं। इतनी पीली पड गईं कि देखकर रुलाई आने लगी। गरदन लटक गई। वहुत-से लोगो ने समझ लिया कि वापू चल वसे। मुझे तो ऐसा मालूम हुआ, सारा ब्रह्माण्ड सूना हो गया। कुछ ही दिन पहले मेरी माताजी का स्वर्गवास हुआ था। अन्त समय उनके शरीर की जो अवस्था हो गई थी, वही चेष्टाए महात्माजी के शरीर की इस समय दिखाई पडी। एक ही दो दिन पहले महात्माजी ने प्रार्थना के समय प्रवचन करते हुए कहा था—"मरना तो ऐसा कि चर्खा कात रहे है, कातते-कातते दम निकल गया। वात कर रहे है, बोलते-बोलते सास छूट गई।" मेरे मन मे हुआ, महात्माजी मृत्यु का भी पदार्थ-पाठ दे गए। मौत भी करके दिखा दी। वह एक पुनीत दृश्य

था। शोक, करुणा, उदासीनता, चिन्ता, उद्विग्नता का अजीव मिश्रण लोगो के चेहरे पर छा गया था। कोई देश के भविष्य की चिन्ता मे डूव गया था, कोई आश्रम के सोच मे पड गया था। किसी के सामने खुद अपनी समस्याए खडी हुई थी। किसी को वापू के मिशन की फिक्र थी। मेरे मन मे उस समय क्या-क्या भाव उठे, यह लिखना शक्ति के वाहर है। या तो हृदय भाव-शून्य हो गया था, या वे इतनी मात्रा मे और इतनी तेजी से आते-जाते थे कि उनका स्मरण रहना असम्भव था। मै तो वड़ी कठिनता से अपनी रुलाई रोके उनके पैरो मे सोठ मलता रहा। इसीको मैने वड़ा अहोभाग्य माना। जिसे मैने अपना हृदय-देव वनाया है, ऐसे समय उसकी चरण-सेवा करने का समय मिला—उस महा-अधकार मे यह भाव एक प्रकाश-रेखा-सा मेरे हृदय को आश्वासन दे रहा था। ढाई-तीन मिनट मे महात्माजी ने आखे खोली। नजर सीधी रग-मच की ओर गई। कष्टपूर्वक मुरझाये मुख से आवाज निकली—"खेल क्यो वद कर दिया, उसे जारी करो।" यह शब्द सुनते ही इधर लडको का खेल फिर शुरू हुआ, उधर हम लोगो के गये प्राण मानो फिर लौट आये। ब्रह्माण्ड फिर हिलता-डोलता मालूम हुआ। ५-७ मिनट वाद महात्माजी ने पूछा—"मेरा सूत कितना हुआ है, गिना ? कितना कम है ?" एक ने कहा—"१६ तार कम है।" हुक्म हुआ, "मेरा चर्खा लाओ, शेष तार कातना है।" आसपासवालो के खिले चेहरे फिर मुरझाने लगे। प्राण तो शरीर मे अभी लौटे ही नही है और बैठकर चर्खा कातने का आग्रह ! राम, यह कैसा वे-पीर है ! जमनालालजी ने वुरा मुह वनाकर कहा—"वापूजी, अव आज न काते तो न चलेगा ?" उत्तर मिला—"यह कैसे हो सकता

है ?" इस समय महात्माजी के चेहरे का भाव मानो कह रहा था—"जमनालालजी, तुम तो ऐसा न कहते ?" शकरलालभाई को तो चर्खा कातने की वात एकवारगी असह्य हो गई। एक तो उनका यह इलजाम रहा ही करता है कि वापू शरीर की परवाह नही करते। फिर ऐसे समय चर्खा कातने का आग्रह इन्हे इतना बुरा लग रहा था मानो वापू हम लोगो की विलकुल परवाह न करके मौत को जवर्दस्ती बुला रहे है। अन्त को चर्खा आया और महात्माजी कातने बैठे। कात रहे थे कि डाक्टर शहर से देखने आये। देखकर वोले—"ये तो भले-चगे है, इन्हे क्या देखू ?" महात्माजी ने हँसकर कहा—"मेरी नही, शकरलाल की दवा करो।"

एक मित्र, जो दूर खडे अनिमेष नेत्रो से महात्माजी को पी रहे थे, मुस्कराकर बोले—"भाऊजी, आज तो भूत, भविष्य, वर्तमान तीनो की फिल्मे मेरी आखो के सामने दौड रही थी—वुढऊ, इसी तरह एकाएक चल वसनेवाले है।"

लडको के नाटक का जो दृश्य खुला तो एक पात्र कह रहा था—"देखो, अभी दो घडी के वाद मेरी मृत्यु आनेवाली है, इसलिए धर्म के वारे मे जो कुछ पूछना हो, पूछ लो।" मेरे दिल मे एक हलका-सा भय दौड गया—"ईश्वर यह कैसी भविष्यवाणी!—अतिस्नेह पाप शकी।"

वह चित्र मेरी आखो से हटाये नही हटता। अव वह एक सपना-सा मालूम होता है—पर उस दृश्य मे कितनी पवित्रता थी, कितना जीवन था! उस मूर्च्छा मे और उससे उत्पन्न उद्विग्नता मे कितनी पवित्रता थी! मृत्युवत् मूर्च्छा, जरा चेतना आते ही खेल शुरू करने की आज्ञा, किंचित थकावट दूर

होते ही चर्खा कातने बैठना—इन वातो के इतिहास मे महात्मा-जी के सारे जीवन का रहस्य और माहात्म्य आ जाता है। जब-जव उस भव्य और दिव्यदृश्य का स्मरण हो आता है, तव-तब हृदय के अन्तस्तल से यह आवाज उठती है—धन्य है हमारी यह गुलामी! अमर रहे हमारी यह विपत्ति! इन्हीकी वदौलत ऐसे पुरुष हमे नसीव होते है। यदि ईश्वर कहे कि "लो, मै तुम्हे आजाद कर देता हू, तुम्हारे सव दु खो और कष्टो को दूर किये देता हू, पर इसके वदले मे महात्माजी-जैसो का जन्म लेना वन्द कर देना चाहता हू," तो मै कहूगा—"मै गुलामी से जरूर ऊव गया हू, आजादी का जरूर भूखा हू, देश की दुर्दशा मुझे विच्छू की तरह डस रही है, उसके लिए मुझसे वडी-से-वडी कीमत ले लीजिए—महात्माजी-जेसे तक की आहुति लेना हो तो ले लीजिए, पर उनका आना मत रोकिये। यदि गुलामी, आपत्ति की यातना मे ही ऐसो का जन्म होता हो तो मै आगे वढकर उस गुलामी और विपत्ति के चरण चूमूगा। वह स्वराज्य बेकार है, जिसमें पवित्र विभूति न हो—उसके लिए स्थान न हो, वह पराधीनता, वह नरक, स्वर्ग और अपवर्ग से भी वढकर है, जिसमे पवित्र विभूतियो का दर्शन होता हो।"

बुद्धि के उदय के युग की याद दिलानेवाले हमारे मित्र इसे भोली भावुकता कहकर इसपर हँस पडेगे। मुझे इसकी शिकायत नही। मे कह चुका हू, दीवानो का रास्ता जुदा है—समझदारो का रास्ता जुदा है। समझदारी, ठडापन, खुदगर्जी, गैरत और जिल्लत से मुझे दीवानो का आत्मार्पण, ऊचा उठना, उडना और कूद पडना अधिक गौरवपूर्ण मालूम होता है। बुद्धि की तीव्रता की अपेक्षा हृदय को ऊचा उठाने का उतना सामर्थ्य

नही है, जितना हृदय की निर्मलता मे बुद्धि के तीक्ष्ण बनानें का है। हृदय की मलिनता ज्यो-ज्यो कम होती जाती है, त्यो-त्यो बुद्धि की तीव्रता और साथ ही निर्णय की शुद्धता अपने-आप बढती जाती है। पवित्रता की चाह और स्वाधीनता की चाह एक ही वस्तु है। कोरी स्वाधीनता चाहनेवाला दूसरे व्यक्तियो के अकुश से अपने को छुडाना चाहता है, पर पवित्रता का इच्छुक तो अपनी भी बुराइयो और दोषो से अपने को मुक्त कर लेना चाहता है। अतएव, वह बढकर और ऊचे दर्जे का स्वाधीनता-प्रेमी है।

मेरे दूसरे भाई कहेगे—यह बीसवी सदी मे तुम व्यक्ति-माहात्म्य का क्या गीत गाने लगे? दुनिया कहा जा रही है, तुम कहा जा रहे हो?

हा, बात कुछ है उलटी। उस पवित्र दृश्य को पाठको के सामने उपस्थित करने की आजादी मैंने इसलिए नही ली कि पाठक महात्माजी को ईश्वर समझ ले, उनकी मूर्त्ति बनाकर, उसका ध्यान और उनके नाम का जप करे—हालाकि हिन्दू-जीवन की वस्तुस्थिति मे तो इसे भी एक हद का स्थान है। मेरा कहना यही है कि दुनिया व्यक्तियो की बनी हुई है, व्यक्तियो के लिए है और सिद्धान्तो, आदर्शो की कल्पना हम व्यक्तियो के ही द्वारा कर सकते है। व्यक्ति क्या है? एक जीता-जागता आदर्श और सिद्धान्त ही तो है? लोग क्यो राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध, महावीर, रामदास, मुहम्मद, गोविन्दसिह, मार्क्स, लेनिन को याद करते है? क्यो गाधी को याद करना चाहते है? यदि ये कुछ सिद्धान्तो के प्रतिपालक, कुछ आदर्शों के प्रवर्त्तक न होते तो इनकी हड्डी-पसलियो मे क्या रखा था? लोग उनके

शरीर को नही मानते है, उनके गुणो और कार्य की पूजते है, और शरीर इन बातो का साधन होता है, इसलिए जबतक वह है, तबतक उसकी महिमा और प्रतिष्ठा को मिटा देने का सामर्थ्य किसी में नही। फिर मैंने तो उस पवित्र प्रसग का वर्णन इसलिए किया है कि हम—महात्माजी को किसी भी अश और किसी भी अर्थ मे अपने से श्रेष्ठ समझनेवाले—उनके सम्बन्ध मे सावधान हो जाय। जो उनमे विशेष अनुराग रखते है, जिन्हे उनका जीवनादर्श प्रिय है, जो अपने को उनका अनुयायी मानते है, वे अपने कर्तव्य का विशेष रूप से विचार और निश्चय कर ले। अबतक न समझा हो तो अब शीघ्र समझ ले कि महात्माजी क्या चाहते है और क्या कर रहे है। देश के नवयुवक और विद्यार्थी कम-से-कम उनके जीवन से तो वाकिफ हो ले। यह कितने आश्चर्य और दु ख की बात है कि जर्मनी, आस्ट्रिया और फ्रास के विद्वान महात्माजी पर बढिया विवेचनात्मक पुस्तके लिखे और भारतवर्ष के स्कूल-कालेजो मे पढनेवाले हमारे विद्यार्थी उनके मर्म तक को समझने की फुरसत न पावें ! अस्तु !

माने कि हम उनके जीवन से निराश हो चुके है, बल्कि इसलिए माने कि मृत्यु प्रकृति का एक नियम है और जागरूक मनुष्य को सदा उसके लिए तैयार रहना चाहिए और न हम मृत्यु की बातो और चर्चा को अमगल या भयजनक ही समझे। मृत्यु शरीर की एक मीठी चिरनिद्रा है। मृत्यु जीवन के विकास की एक अवस्था है। शरीर का विकास मर्यादित है; वह प्रकृति के—पचमहाभूतो के—नियमो से बधा हुआ है। आत्मा का विकास अमर्याद है और प्रकृति की पहुच के परे होना ही उसका अन्तिम लक्ष्य है। किसी की आत्मा का विकास जब एक शरीर के विकास की मर्यादा के बाहर जाने लगता है, तब शरीर का छूट जाना अनिवार्य हो जाता है। विकासशील आत्माओ के जीवन मे शरीर की जीर्णता और अन्त स्थिति को हम विशेष रूप से देख सकते है। अतएव शरीर का नाश दु ख, भय, या निराशा का कारण न होना चाहिए। महात्माजी के सम्बन्ध मे भी शरीर-मोह से हमे किसी प्रकार प्रभावित न होना चाहिए बल्कि मै तो देखता हू कि वह तो अमरता की गोद मे दिन-दिन आगे बढ रहे है। हा, जबतक उनका शरीर अपने स्वाभाविक क्रम से छूटने की स्थिति को नही पहुचा था, तबतक उसकी रक्षा और पोषण की चिन्ता उन्हे और हमे सबको होनी चाहिए थी, पर उनके शरीर की वर्तमान जीर्ण-शीर्णता को ध्यान मे लाकर हमे अपने-अपने कर्तव्यो मे अधिक सावधान और जागरूक अवश्य हो जाना चाहिए।

खुद महात्माजी ने तो अपनी ओर से यह कह दिया है कि मेरे शरीर का खयाल छोड दो—असली बात तो स्वराज्य है, (अब उनके निधन के बाद 'स्वराज्य' की जगह 'रामराज्य'

मान ले)। उसकी प्राप्ति मे जुट पडो और उसके लिए आकाश-पाताल एक कर दो। स्वराज्य का अचूक साधन-मध्यविन्दु है खादी और चर्खा। अतएव स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हमे कम-से-कम इतना अवश्य करना चाहिए :

(१) केवल स्वदेशी वस्त्र ही पहने और वरते। उसमें भी जितनी अधिक खादी इस्तेमाल कर सके, नियम-पूर्वक करे—कम-से-कम हर भारतवासी एक कुरता और टोपी खादी की अवश्य पहनें और वहने खादी की साडी या फिलहाल कचुकी ही पहनने का व्रत धारण कर ले।

(२) रोज नियम-पूर्वक चर्खा या तकली पर सूत काते। जिन्हे महात्माजी का जीवनादर्श प्रिय है, उन्हे इतनी वातो पर खासतौर पर ध्यान देना चाहिए :

(अ) मन, वचन और कार्य मे अधिकाधिक सत्य का अवलम्वन करे।

(व) मनुष्य-मात्र के प्रति प्रेम का व्यवहार करने का यत्न करे।

(स) जीवन के हर अग मे सयम को प्रधानता दें, क्या स्त्री-पुरुपो के पारस्परिक सम्वन्ध मे, क्या खान-पान और रहन-सहन मे, क्या सुख और भोग की सामग्री मे—सव जगह सयम से काम लेने की आदत डाले।

(द) अछूतो को लेकर छुआछूत मानना छोड दे।

(क) हिन्दुओ और मुसलमानो के वैमनस्य को घटाने में अपनी शक्ति लगावे। कम-से-कम अपनी ओर से उसे वढने न दे।

(ख) नियमनिप्ठ और निर्भय वनने का यत्न करे।

(ग) मरे हुए पशु की ही खाल का चमडा इस्तेमाल करे, कटे पशु का नही।

(घ) जिन लोगो ने कुछ-न-कुछ काम अपनी तरफ ले रखा है, वे इस उत्साह, भाव और लगन से उसमे जुट पडे, मानो महात्माजी को हम अव भी दिखा दे कि आपके न रहने पर हम अपने कामो को और भी जिम्मेदारी और दृढता के साथ करते रहते है।

यदि हम इतना कर सके तो महात्माजी, मर जाने पर भी, सर्वदा हमे अमरता की गोद मे दिखाई देगे और यदि हम कोरे शब्दो से उनकी पूजा करते रहे तो वह हमारे सामने अमर होकर भी अपने को मरे से वदतर समझेगे। और मै जरूर मानता हू कि इस पिछली अमरता से पहली मृत्यु हर तरह श्रेयस्कर है। यो तो महापुरुपो का जीवन जैसे चैतन्य का स्रोत और प्रकाश की शिखा होता है, वैसे ही मृत्यु एक स्फूर्ति की बैटरी होती है। जीवित अवस्था मे उसकी आत्मा शरीर के कैदखाने मे वन्द रहकर अपना काम करती है, पर मृत्यु के पश्चात वह स्वतत्र और स्वाधीन होकर फैलती और अपना काम करती है। अत-एव, आइये, हम तो चिन्ता और आशका की घटनाओ को चीर-कर अपने काम मे आगे वढते चले जावे और इसी वात पर परमात्मा का उपकार माने कि हम महात्माजी-जैसी विभूति के समय मे, उन्हीके देश मे, उत्पन्न हुए, रहे, उनके दर्शन किये, उनके लेख पढे, उपदेश सुने और स्वराज्य की सेना मे—एक छोटे और मामूली क्यो न हो—उनके सिपाही वनने का गौरव प्राप्त किया। और महात्माजी के पुरुषार्थी जीवन को देखकर उनकी-सी विभूति वनने का हौसला रखे। महात्माजी का जीवन क्या

है ? आशा, अमरता और आत्मा का सदेश है। जीवन, जाग्रति, बल और वलिदान का नमूना है। अमरता की गोद ऐसे ही जीवन के लिए सिरजी और खुली है। ओ मनुष्य, तू मृत्यु की भयानकता से न सिहर—उसके अन्दर अमरता की ज्योति जगमगा रही है। तू गा :

अब हम अमर भये न मरेंगे।
या कारण मिथ्यात दियो तज, क्योंकर देह धरेंगे ?
राग-द्वेष जग-बन्ध करत हैं, इनको नाश करेंगे।
मर्यो अनन्तकाल ते प्रानी, सो हम काल हरेंगे।।
देह विनाशी हूं अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।
नासी-नासी हम थिरवासी, चोखे ह्वै निखरेंगे।।

अप्रैल, १९२८

६

पवित्र दृश्य

विजोलिया के वारे मे पूज्य महात्माजी का तार पाते ही मै वारडोली रवाना हो गया। कोई ९ वर्षो मे लगान-सत्यागह और स्वराज्य-सग्राम इन दो युगान्तरो के वाद, मैने बारडोली मे प्रवेश किया। रिपवान विकल की-सी कुछ हालत मेरी हुई। स्वराज्य-आश्रम अव भी खासी 'सैनिक छावनी' दिखाई दिया। इस समय महात्माजी पर दिल्ली की सन्धि-शर्तो के पालन कराने की वडी जिम्मेदारी थी। उन्हे जरा भी फुरसत नही मिलती थी। ऐसी दशा मे विजोलिया का बोझ भी उनपर रखते हुए मुझे वडा सकोच हो रहा था। स्वराज्य-आश्रम मे पहुचते ही म उनके चरणो तक पहुच गया। उनके विश्व-विमोहक हास्य और अमिय दृष्टि ने, जोकि प्रत्येक छोटे-वडे आगन्तुक के स्वागत के लिए सदा मुक्त रहती, मेरी झिझक और चिन्ता दूर-सी कर दी। दूसरे तमाम आवश्यक कामो को छोडकर उन्होने दो वार करके कोई दो घण्टे तक मेरी सारी वाते वडे ध्यान से सुनी। महात्माजी का यह स्वभाव है कि चाहे कितने ही ज़रूरी और भारी कामो के बोझ से पिस रहे हो, पर उन्हे यदि किसी तरह यह मालूम हो जाय कि दूसरे को कुछ दु ख है, कोई कठिनाई है और वह उनकी सहायता चाहता है तो फिर उनसे उसकी सहायता किये विना नही रहा जाता। यह उनकी महानता है। परन्तु मै देखता हू कि हम लोग उनकी इस प्रकृति का इतना

अधिक फायदा उठाते है कि छोटी-छोटी-सी वातो मे भी लम्बी-लम्बी चिट्ठिया लिख-लिखकर और उनतक दौड-दौडकर उन्हे बहुत तग करते हैं। इससे एक तो हमारा स्वावलवन, पुरुषार्थ और आत्मविश्वास नही बढता और दूसरे उनका बोझ अकारण वढ जाता है। विजोलिया के वीर दु खी किसानो के प्रति तो उनके मृदुल और दयामय हृदय मे सहानुभूति ही हो सकती थी। पिछले १२ वर्ष के ससर्ग मे इतना अधिक समय मैंने उनका कभी नही लिया था।

× × ×

अपनी वातचीत के बीच मे मैंने एक बडा ही पवित्र दृश्य देखा, जिससे सत्य और अहिसा का चमत्कार प्रत्यक्ष होता था। वारडोली के किसानो की कुछ जब्तशुदा जमीन के एक खरीदार आये। हाथ जोडकर कहने लगे—"साहव, हवे तो भूल थई गई। मारे आ जमीन न लेवी जोईती हती, पर हवे तो भूल थई —हु वगर किमते फरी आपवा तैयार छु। हवे मने माफी मलवी जोइए।" जब ये शब्द उनके मुह से निकल रहे थे तो ऐसा मालूम होता था, मानो उनके दिल पर से कोई पत्थर हट रहा हो। महात्माजी ने वडे प्रेम से उनकी वात सुनकर गुजरात के प्रसिद्ध 'प्याज-चोर' श्री पड्या से कहा—"देखो, इनके साथ गाव के लोग अव किसी तरह का दुर्व्यवहार न करे।" विजोलिया के वारे मे भी उन्हे इस वात की वडी चिन्ता रही कि सत्याग्रही किसान 'वापीदारो' पर ज्यादती न करे। मैंने उन्हे किसानो की तरफ से शान्ति और धीरज का आश्वासन दिया। अहिसा का स्वाद और गुण ही यह है कि वह मनुष्य का हृदय वदल देती है।

मनुष्य खुद अपनी कमी और भूल समझने लगता है और अपनी बुराई के लिए पछताता है।

× × ×

मेरे पडोस में एक अग्रेज ठहरा था। गाधीयुग में हिंदुस्तानी और खासकर गरीबो के वेश मे रहनेवाले बहुतेरे अग्रेज़ भाई हो गए है। खुला वदन, कमर से एक गमछा लपेटे हुए, नंगे पाव एक अग्रेज़ युवक को स्वराज्य-आश्रम मे मेरी आखो ने जिज्ञासा से देखा। विना मिर्च-मसाले का सादा खाना उसने हिन्दुस्तानी ढग से खाया। जव परिचय हुआ कि ये फादर एल्विन है—पूना के 'क्राइस्ट सेवा-सघ' के प्रधान स्तम्भ है तो जिज्ञासा आदर और विस्मय मे वदल गई। महात्माजी सत्य और अहिंसा पर जिस कदर जोर देते है, अपनी वारीकियो को जिस तरह समझाते है और अपने जीवन में जितनी साधना इनकी उन्होने कर ली है, उसका फल केवल यही नही हुआ है कि व्यक्ति अपने आत्म-सशोधन मे लगे हुए है, वल्कि सस्थाओ और जातियो तक मे आत्म-सशोधन की भावना जग रही है। जव से उन्होने ईसाइयो मे पादरियो की स्थिति के सम्वन्ध मे अपने क्रान्तिकारी किन्तु सत्य-पूत विचार प्रदर्शित किये है, तव से पादरी-समूह में खलवली मच गई है और कितने ही पादरी जो सचमुच ईसा की शुद्ध भावना से प्रेरित होते है, महात्माजी के वचनो की सचाई को अनुभव करने लगे है। फादर एल्विन इन्ही ईसा-भक्तो मे है। उन्होने एकवार जेल-पीडित देशभक्तो की एक सभा मे उनसे अपने उन गोरे पुलिस सिपाहियो की तरफ से माफी मागी थी, जिन्होने उनपर पिछले स्वराज्य-सग्राम में

लाठिया बरसाई थी। अग्रेज़ जाति के दो स्पष्ट नमूने हमारे सामने है—एक ओर डण्डा बरसानेवाली पशुता या मदान्धता, और दूसरी ओर सरल हृदय से उसकी माफी मागनेवाली मनुष्यता और सहृदयता। डडा अग्रेज जाति को तबाह कर देगा —फादर एल्विन की सचाई, सरलता और मानवता अग्रेज़ों को ऊचा उठावेगी और दूसरी जातियों मे घृणा की जगह प्रेम का स्थान दिलावेगी। चुनाव अग्रेज़ो के हाथ मे है। परमात्मा उन्हे सही चुनाव करने की प्रेरणा करे।

जून, १९३१

७

आश्रम का प्रसाद

कलकत्ते से लौटकर 'हिन्दी नवजीवन' के सिलसिले मे मुझे साबरमती आश्रम मे जाने का लाभ मिला था। वछडा जिस प्रकार अपनी माता के पास जाने के लिए दौडता है, वैसे ही मेरा हृदय आश्रम के लिए दौडता रहता है। जब-जब अपनी दुर्बलताए यहा की झझटो से घबरा देती है, तब-तब आश्रम की ओर मन दौडने लगता है और कहने लगता है कि वहा के शान्त और पवित्र वायुमण्डल को छोडकर यहा कहा उलझनो मे आ फसा! परन्तु ऐसे समय 'अगीकृत सुकृतिन परिपालयन्ति' यह उत्साह-वचन मेरी सहायता के लिए दौड पडता है। ऐसी अवस्था मे जब-जब आश्रम जाने का थोड़ा भी अवसर हाथ लगता है तो मै माता के स्तन की ओर झपट पडनेवाले भूखे वालक की तरह झपट पडता हू। कुछ महीनो से सत्याग्रहाश्रम का नाम 'उद्योग-मन्दिर' रख दिया गया है। इसका कारण यह है कि ज्यो-ज्यो महात्माजी और आश्रमवासी आश्रम के व्रतो की सूक्ष्मता का विचार करते गए, त्यो-त्यो उन्हे यह मालूम होता गया कि सूक्ष्म अर्थ मे सब व्रतो का सोलहो आना पालन अनेक आश्रमवासियो से नही हो रहा है। अतएव उन्होने 'सत्याग्रहाश्रम' नाम अपने लिए अपनी वर्तमान अवस्था से वहुत ऊचा समझा और 'उद्योग-मन्दिर' नाम उचित देखा। सुवह ४ वजे से रात के ९ वजे तक १७ घटे रोज अपने काम और

उद्योग का हिसाव देने की तैयारी रखनेवाले आश्रम-वासियो ने 'उद्योग-मन्दिर' अपने लिए अधिक सार्थक देखा और वे महात्माजी की छत्रछाया मे और प्रोत्साहन तथा मार्ग-प्रदर्शन में फिर 'सत्याग्रहाश्रम' का नाम धारण करने के योग्य वनने का उद्योग कर रहे है। यह उनके सत्यानुराग और नम्रता का अचूक प्रदर्शन है और अवकी मैने देखा कि 'सत्याग्रहाश्रम' का नाम धारण करके आश्रमवासी जितने ऊचे नही उठे थे, उतने 'उद्योग-मन्दिर' नाम रखकर उठ गए। इस समय उनके जीवन मे जो स्वच्छता, गभीरता, नियम-निष्ठता, सुश्रृखलता और एक-रागिता दिखाई दी, वह पहले कभी न दिखाई दी थी। आश्रम मे महात्माजी भी सुवह-शाम अवसर पाकर अपना हृदय आश्रम-वासियो के सामने उडेला करते है। इसमे आश्रमवासियो को अमोल आध्यात्मिक, धार्मिक, व्यावहारिक और राजनैतिक ज्ञान तथा उपदेश मिला करता है। आजकल आश्रम मे महात्माजी की एक ही धुन है—आश्रम सव अर्थो मे स्वावलम्वी और स्वाधीन हो जाय। इसके लिए वह एक तो इस वात पर ज़ोर देते है कि सव लोग स्वेच्छापूर्वक अपने वनाये नियमो और व्रतो का पालन हृदय के पूरे अनुराग और सचाई के साथ करे, और दूसरे प्रवन्ध मे किसी प्रकार की कोई त्रुटि न रहने पावे, एवं एक-एक मिनट काम मे लगा रहे। इसके लिए वे स्वच्छता, शान्ति और छोटी-छोटी वातो पर पूरा ध्यान देने का वरावर आग्रह करते रहते है।

एक रोज किसी आश्रमवासी या अतिथि ने आश्रम के रास्ते पर थूक दिया। महात्माजी ने रास्ते पर थूक पडा देखा तो उस पर मिट्टी डाल दी और शाम को प्रार्थना-सभा मे कहा, "आश्रम मे पाखाना-पेशाव का स्थान तो निश्चित ही है; परन्तु

लोग कभी-कभी रास्ते पर थूक देते है, या नाक साफ कर लेते है। यह भी ठीक नही। रास्ते के किनारे जहा लोगो के पैर या नजर न पडे ऐसी जगह थूकना या नाक साफ करना चाहिए। रास्ते पर यदि कही हमे ऐसी गन्दगी दिखाई दे तो हमारा काम है कि उसपर मिट्टी डालकर उसे ऐसी जगह फेक दे, जहा सहसा किसी का पैर न पडता हो। आज मेरा कर्तव्य यही था कि मै भी उस गन्दगी को वहा से उठाकर फेक देता, पर एक तो मै राह चल रहा था, दूसरे हाथ धोने के लिए पानी पास नही था। इसलिए मिट्टी डालकर ही खामोश हो रहा। फिर भी मै मानता हू कि अपने कर्तव्य-पालन मे मैने त्रुटि कर दी। हमारा तो काम है कि लोग जहा-जहा विगाड करे, हम वहा-वहा सुधार करें। लोग विगाडते चले जाय और हम सुधारते चले जाय। तब जाकर इस देश का उद्धार होगा।"

आश्रम मे आजकल एक-दो अपवादो को छोडकर सव आश्रमवासी स्त्री-पुरुष सयुक्त-भोजनालय मे भोजन करते है। छोटे-वडे १७५ के लगभग लोग एक साथ बैठकर भोजन करते है। महात्माजी भी सवके साथ ही खाना खाते है। इस समय भी वह अपना समय एक मिनट नही जाने देते। या तो चिट्ठिया पढते है, या किसी को वातचीत का समय दे देते है। एक रोज़ तो मैने उन्हे एक लेख या चिट्ठी लिखाते हुए भी वहा देखा था। एक दिन गुजरात कालेज के हडताली विद्यार्थियो के नेता इसी समय उनसे परामर्श कर रहे थे। भोजनालयो मे वर्तनो का तथा लोगो की वातचीत का शोर होना स्वाभाविक है। परन्तु महात्माजी की यह कोशिश है कि वहा भी इतनी शान्ति रहे कि लोग लिख सके और खानगी वाते कर सके। एक रोज अतिथि

लोग जोर-जोर से बाते कर रहे थे। महात्माजी ने प्रार्थना के समय इसका ज़िक्र किया और सुझाया कि कृपया शान्त रहिए। इस आशय की छोटी-छोटी कई तख्तिया भोजनालय मे जुदी-जुदी भाषाओ मे लिखकर लगा दी जाय। जबतक भोजन के समय इतनी शान्ति न रहेगी कि दूसरे आदमी के किसी काम मे जरा भी खलल न पहुचे, तबतक हमारा प्रबन्ध अपूर्ण ही समझना चाहिए। छोटी-छोटी बातो का इतना ध्यान महात्माजी रखते है कि बड़ा आश्चर्य होता है और उनके सामने खूब शर्मिन्दा होना पडता है। एक-दो दिन अभ्यास न रहने के कारण कुछ अतिथि सुबह चार बजे की प्रार्थना मे सम्मिलित न हो पाये। तुरन्त उन्हे मीठा उलहना पहुच गया। कुछ छोटी लडकिया अधिक शाक लेकर डरती आख से महात्माजी की ओर देखती हुई जबर्दस्ती शाक खा रही थी। झट महात्माजी की नज़र उधर दौड़ गई और परोसनेवालो को प्रेम का उलहना सुनना पड़ा। मेरे साथ मे कुछ अतिथि बिना पहले से सूचना दिये आश्रम पहुच गए। महात्माजी ने पहला प्रश्न यही किया कि व्यवस्थापक को आने की और भोजन की सूचना दी या नही,? एक अतिथि बातचीत का समय मागकर ज़रा पिछडकर पहुचे। झट उन्हे शर्मिन्दा किया गया। "मेरी आखे तो आपको समय पर इधर-उधर खोज रही थी।" इसी तरह छोटी-छोटी बातो पर पूरा ध्यान रखने की आवश्यकता बताते हुए एक सज्जन से उन्होने कहा—"हमे हरएक बात की तफसील मे उतरकर उसे देखना चाहिए। ऊपर-ऊपर देखकर किसी चीज को न छोड देना चाहिए। छोटी बात समझकर उसकी उपेक्षा न करनी चाहिए। किताबे अपनी जगह रखी हुई है या नही, एक जगह

की चीज दूसरी जगह तो किसी ने नही रख दी, बताया काम दूसरे ने ठीक उसी तरह किया है या नही, इन बातो मे कार्यकर्ता को बडी सावधानी और जागरूकता रखनी चाहिए। जो छोटे कामो की उपेक्षा करता है उसके बडे कार्यों को भी यह त्रुटि बिगाड देती है।"

आश्रम मे एक घण्टे मे कम-से-कम १६० तार सूत कात लेने का नियम रखा गया है। एक दिन महात्माजी ने सूत कातकर सदा की तरह गिननेवाले के भरोसे छोड दिया। उस दिन १६० मे कुछ तार कम थे। गिननेवाला इसकी सूचना महात्माजी को समय पर देना भूल गया—प्रार्थना मे जब महात्माजी का नाम पुकारा गया और १६० मे तार कम होने की बात उन्हे मालूम हुई तो उन्हे बडा दु ख हुआ। "मेरे नाम पर आज तार कम लिखे जाय, यह मेरे लिए कितनी शर्म की बात है। यह मेरा प्रमाद है। गिननेवाले का दोष नही। मुझे अपना काम खुद करना चाहिए था। मैने उसके भरोसे क्यो छोडा।" दूसरे दिन से खुद तार गिनने लगे।

१९२९

: ८ :

निर्मल हृदय की एक बूंद

कुछ दिन पहले डा० सैयद महमूद अजमेर आये थे और यहां के भिन्न-भिन्न विचार रखनेवाले राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ से उन्होने काग्रेस-सगठन को मजबूत वनाने के विषय मे वातचीत की थी। उन्हे कार्यकर्ताओ की इस भावना पर वडा आनन्द हुआ कि यहा दोनो तरफ के लोग यह कहते है कि "ओहदा हमे नही चाहिए, आप ले लीजिए" जवकि और प्रान्तो मे पदो पर कब्जा करने की होड लगती है। यहा के राष्ट्रीय सेवको के लिए सद्भावना यही पर समाप्त नही हो जाती है। डा० साहव के चले जाने के वाद कुछ प्रधान कार्यकर्ता इस वात पर परामर्श करने के लिए एकत्र हुए कि हमे आपस के मतभेद को भुलाकर प्रात मे सगठित वल उत्पन्न करना चाहिए। एक ने यह योजना पेश की कि कोरी योजना वना लेने से काम नही चलने का, जवतक कि हम एकत्र होकर उसको अमल मे लाने का यत्न न करे। इसके लिए यह ज़रूरी है कि हम या तो गई-गुजरी वातो को भुलाकर कोरे कागज पर नये सिरे से लिखना शुरू करे, या गडे मुर्दो को उखाडे और उनका फैसला करे। मुझे यह लिखते हुए वडा ही आनन्द होता है कि सवने तुरन्त एक स्वर मे इस वात को मान लिया कि गई-गुजरी वातो को दफना दो और आगे चलो। यह इस उत्सुकता की सूचना है कि हमे वहस और झगड़ो से मतलव नही, हम तो मिलकर काम करना चाहते है।

एक थकी हुई फौज मे पुराने घावो को भूलकर नई रचना करने का उत्साह सचमुच ही उसके जीवन और उज्ज्वल भविष्य का लक्ष्य है।

इसके बाद ही जगत की परम-पुण्य विभूति महात्मा गाधी का आगमन अजमेर मे हुआ। राजस्थान के पुराने नेता श्रीअर्जुनलालजी सेठी अर्से से राजनैतिक मत-भेदो के कारण एकान्त सेवन कर रहे थे। भला हो उन मित्र का कि जिन्होने महात्माजी को प्रेरित किया कि वह सेठीजी के घर जावे, जिससे उन्हे (सेठीजी को) प्रतीत हो जाय कि महात्माजी के दिल मे उनके लिए पूर्ववत् ही प्रेम है। महात्माजी का हृदय तो स्वच्छ-निर्मल प्रेम का अखण्ड स्रोत ही ठहरा !

उनके सेठीजी के घर पदार्पण करते ही सेठीजी और उनकी धर्मपत्नी अपने-आप को भूल गए—गद्गद् हो गए ! प्रेम की विह्वलता मे उन्हे यह सूझ नही पडता था कि क्या बोले और क्या करे। बडा ही हृदयस्पर्शी दृश्य था। एक ने कहा, "आज से काग्रेस अजमेर मे मजबूत हो गई। अब कोई उसकी तरफ आख उठाकर नही देख सकता।" दूसरे ने कहा, "आज से हमारा मतभेद खत्म हो गया, अब हम काग्रेस के लिए अपनी जान दे देंगे।" सेठीजी ने कहा, "मुझे कुछ नही कहना है। आप इन बच्चो के सिर पर हाथ रख दीजिए, जिससे वे देश के सच्चे सेवक बने।"

सेठीजी के हिन्दू-मुसलमान सभी मित्र और साथी मौजूद थे। उस समय की निर्मलता और उसका आनन्द अनुभव करने की ही वस्तु है। महात्माजी के इस कार्य ने सेठीजी और उनके मित्रो को जैसा सुखी, सन्तुष्ट और आनन्दित किया, वैसा न

संकड़ों दलीलो से किया जा सकता था, न हजारो रुपये खर्च करने से। निर्मल हृदय की एक बूद जो चमत्कार कर सकती है, वह दूसरी कोई शक्ति नही कर सकती।

जुलाई, १९३४

९

सतयुग की झलक

हिन्दू लोग आमतौर पर यह मानते है कि यह कलियुग है। अभी घोर कलिकाल आनेवाला है और फिर सतयुग आने मे लाखो वर्षों की देर है। किन्तु न जाने क्यो, जव-जव गाधीजी के सपर्क मे आते है, ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो सतयुग की शुरुआत हो गई हो। हाल ही मे गाधीजी अजमेर पधारे थे। काशी के स्वामी लालनाथजी की पार्टी पहले ही आ पहुची थी। ऐसी भी अफवाहे थी कि पूना से भी कुछ लोग गाधीजी पर हमला करने की फिराक मे आये हुए है। वडे धडकते हुए दिल से, प्रार्थनापूर्ण हृदय से, अजमेर ने उनका स्वागत किया। कार्यकर्ता ईश्वर से मना रहे थे कि वापूजी सकुशल यहा से विदा हो जाय। मैने श्री ठक्करबापा और वापूजी से यह हाल कह दिया था। यह भी खवर आई थी कि स्वामी लालनाथ ने अजमेर के दो वदमाशो को इसलिए तैनात किया है कि वे गाधीजी पर पत्थर फेके। यह सुनते ही वापूजी ने कहा—"स्वामी लालनाथ के द्वारा ऐसा काम नही हो सकता। वह मुझसे कई वार मिले है—मै इस ख़वर पर विश्वास नही कर सकता।" वापू की इस सहज विश्वास-शीलता पर मै खामोश रहा।

ख़वर मिलती है कि स्वामी लालनाथ गाधीजी से मिलने आयगे। स्वामी लालनाथ को एक वार देख लेने की अभिलाषा तो थी ही। इत्तफाक से स्वामी लालनाथ को गाधीजी के कमरे

मे ले जाने का काम मेरे हिस्से मे आ गया। स्वामीजी का चेहरा मुझे उनके उग्र विरोध का सूचक ही मालूम हुआ। किन्तु जव वह गाधीजी से वाते करने लगे तो मेरा ख़याल उनके बारे में वदलने लगा। गाधीजी के प्रति उनका व्यवहार बहुत आदर-पूर्ण था। सहसा किसी को यह विश्वास नही हो सकता था कि दो विरोधी बातचीत कर रहे है। लालनाथजी गाधीजी से आग्रह कर रहे थे कि जव आप काशी पधारे तो हम लोगो के स्थान पर ठहरे। हमारे स्वयसेवक आपका प्रवन्ध और रक्षा करेगे। गाधीजी कहते थे—"ऐसी योजना मुझे तो प्रिय ही होगी। हम दुनिया को दिखा सकेगे कि विरुद्ध मत रखते हुए भी हम एक-दूसरे को सहन कर सकते है।" इस सवाद मे और इस सरल वृत्ति मे मुझे सतयुग की झलक दिखाई दी। कहा वे देश, जहा विरोध की आवाज तक उठानेवाले को गोली से उडा दिया जाता है या देश-निकाला दे दिया जाता है और कहा यह दृश्य कि एक विरोधी दूसरे को अपना मेहमान बनाना चाहता है और दूसरा उनका स्वागत करता है। एक हम है कि अपने विरोधी से घृणा करते है, उसके पास आने-जानेवालो को सदेह की दृष्टि से देखते है, उन्हे भी विरोधी मान लेते है, और एक गाधीजी है, जो विरोधी से खुलकर बात करते है, अपने प्रिय मित्रो की तरह उसका स्वागत करते है और अपने हृदय की विशालता और निर्मलता से उसका विरोध-भाव मिटा देते है! इसका एक और नमूना उसी दिन देखने को मिला।

घटना तो अजमेर की कीर्त्ति को वट्टा लगानेवाली है। वारहदरी के सभामच पर पहुचने के वाद गाधीजी को पता लगा कि स्वामी लालनाथजी और उनके दल के लोगो को स्वयसेवको

तथा जनता ने पीट दिया। लालनाथजी उसी समय वुलाये गए। उनका सिर खून से रगा हुआ देखकर गाधीजी को जो मर्मवेदना हुई वह उनके भाषण से अच्छी तरह मालूम हो जाती है।

उन्होंने कहा—"पण्डित लालनाथ मेरे बुलाये हुए सभा मे आ रहे थे। मैंने उन्हें तथा उनके साथियो को आश्वासन दिया था कि वे सभा मे आकर भले ही काले झण्डो का प्रदर्शन करे, पर उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न होगा। ऐसी दशा में जो मारपीट उनके साथ हुई उसका मुझे प्रायश्चित्त करना होगा। जिन्होने उन्हे मारा है, उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण के कार्य को गहरा धक्का पहुचाया है। हिसा से कभी धर्म की रक्षा और वृद्धि नही हो सकती।"

इतना कहने के वाद उन्होने लालनाथजी से भाषण देने के लिए कहा। कुछ लोगो ने उनके भाषण मे रुकावटे डाली— 'शेम-शेम' की पुकार लगाई, 'नही सुनना चाहते' की आवाज उठाई। तब गाधीजी ने उन्हे डाटकर कहा :

"यदि आप लालनाथजी की वात सुनना नही चाहते तो इसका अर्थ है कि आप मेरी भी वात सुनना नही चाहते। मुझे यदि कहने का अधिकार है कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कलंक और पाप है तो लालनाथजी को भी अपने मत को सुनाने का अधिकार है। यदि आप मेरी वात सुनते है तो आपको लालनाथ-जी की वात सुननी होगी। ऐसा न करना असहिष्णुता है, और असहिष्णुता हिसा है।"

अन्त में लोगो ने लालनाथजी का भाषण भी सुना।

जुलाई, १९३४

. १०

उनकी विनोद-प्रियता

पूज्य बापू जहा सत थे, वहा पूर्ण मानव भी थे और इसी रूप मे विनोदप्रियता, व्यग्य-प्रहार व हास्यवृत्ति उनके स्वभाव का अविच्छिन्न अग थे। स्वय उन्हीके शब्दो मे, "यदि मेरे स्वभाव मे विनोद-प्रियता नही होती तो मै बहुत पहले ही आत्महत्या कर चुका होता।"

वह सत्य-शोधक थे, सिद्धान्तो के कठोर पालक थे, अपरिग्रह, सहिष्णुता, परिश्रम व निर्भयता के मूर्त्तिमान स्वरूप थे, पर साथ ही उनका विश्वास था कि जीवन का हर क्षण हँसकर बिताना चाहिए और जीवन मे कटुता का आदि से अत तक बहिष्कार करना चाहिए। इसलिए उनमे कठोर सैद्धान्तिकता और विनोद का अद्‌भुत सामजस्य था। उन्होने एक बार कहा भी था, "मेरे मज़ाक मे भी हमेशा बडा गम्भीर अर्थ रहता है।"

यह गभीर अर्थ क्या था? बापू का हास्य-विनोद सिद्धान्त के मार्ग पर चलता। उसमे किसी को नीचा दिखाने, चोट पहुंचाने या परेशान करने की भावना नही थी—उनका हास्य-विनोद अर्थपूर्ण व मार्गदर्शक होता था।

सिद्धान्त की बात को छोड दिया जाय तो बापू छोटे-बड़े किसी से मज़ाक मे नही चूकते थे। एक दिन एक हठी पत्रकार ने बापू से पूछा कि क्या आप विनोदप्रिय भी है?

गाधीजी ने उत्तर दिया, "यदि मै विनोदप्रिय न होता तो आप जैसे क्रोधी लोगो से कैसे जीत पाता!"

वस्तुत यही कथन उनके हास्यविनोद का मूलाधार था। वापू का कथन था कि जो हँसता है वह अमृतपान करता है। इस दृष्टि से वे हँसने को कितना अनिवार्य मानते थे, यह श्री नेहरूजी को ४ जनवरी, १९३८ को लिखे गए पत्र से स्पष्ट है। उन्होने पत्र मे नेहरूजी को लिखा था कि सभा मे विनोद कायम रखना। छोटी-छोटी वातो पर चिताग्रस्त, चिढे हुए मनुष्य की तरह व्यवहार मत करना, क्योकि यह तुम्हारे योग्य कर्तव्य नही है।

× × ×

वह विलक्षण प्रत्युत्पन्नमति भी थे और हर प्रश्न का इतना अचूक उत्तर देते थे कि उसमे विनोद भी होता और वह उत्तर प्रश्नकर्त्ता को मौन कर देता। सरदार पटेल के अक्सर उनसे मधुर तर्क चलते थे, और प्राय सरदार पटेल की जोरदार हँसी के साथ ही उनकी समाप्ति होती थी। इन दोनो के मध्य कैसे प्रश्नोत्तर चलते इसका एक उदाहरण है। एक वार पटेल ने गाधीजी के खाने के लिए खजूर भिगोये। गाधीजी रोज़ ६ खजूर लेते थे। सरदार उस दिन पीछे पड गए और वोले कि आज एक खजूर ज्यादा सही। गाधीजी के मना करने पर बोले, "पर ६-७ मे अन्तर क्या है ?" गाधीजी बोले, "तो ५ ही लीजिये, क्योकि ५-६ मे क्या अन्तर है ?"

सुप्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार लुई फिशर भी वापू के व्यग्य-वाण के शिकार हुए थे। वह डील-डौल मे लम्वे-चौडे थे। जव वह वापू से मिलने गाधी आश्रम पहुचे, वहा वापू ने उन्हे भोजन के समय छोटे चम्मच के वजाय वडा चमचा थमा दिया। वृहत्काय फिशर को चकित देखकर गाधीजी ने तुरन्त स्पष्टी-

करण दिया—"अरे भाई, यह तुम्हारे आकार के लिए अधिक सुविधाजनक रहेगा।"

× × ×

एक वार जव एक चित्रकार ने उनका रेखाचित्र वनाकर उनके पास हस्ताक्षर के लिए भेजा था तो वापू ने हस्ताक्षर तो कर दिए, पर साथ मे एक प्रश्न भी जड दिया, कि "यह कौन वदसूरत आदमी है, जिसे तुमने गलती से अपने चित्र का आधार वना लिया है ?"

कभी-कभी तो वापू विनोद मे मानो वालक वन जाते और अपने विनोद का आनन्द महसूस कर प्रसन्न होते। जव वह वर्धा मे थे तो पत्रो के प्रतिनिधि समाचारो के लिए उनके पास चक्कर लगाया करते थे। रोज़ाना पत्रो मे उनके सम्वन्ध मे समाचार छपते और पत्र-प्रतिनिधि सुवह से शाम तक आश्रम के चक्कर काटकर समाचारो की ताक-झाक मे रहते। एक वार एक पत्रकार समाचार न मिलने से वहुत परेशान हो गया तो उसने फोन करके गाधीजी से छापने के लिए कुछ समाचार मागे। गाधीजी ने हँसते हुए कहा, "छाप दो कि आज आश्रम मे अमुक-अमुक सब्ज़िया वनी है, और यह भी छाप दो कि आज ४॥ वजे वर्षा होगी।" दूसरे दिन सचमुच यह समाचार छपा, जिसकी काफी चर्चा रही।

गाधीजी जिस समय 'भारत छोडो' आन्दोलन के दिनो मे पूना-स्थित आगा खा महल मे वदी थे, उस समय एक वार श्रीमती सरोजिनी नायडू ने उन्हे वैडमिंटन खेलने की चुनौती दी। गाधीजी फौरन तैयार हो गए और वल्ला नचाते हुए वोले, 'हालाकि मैने वैडमिंटन कभी नही खेला, लेकिन मै तुम्हे हराकर

रहूगा।" बैडमिटन का मैच शुरू हुआ। श्रीमती नायडू दाए हाथ मे चोट लगी होने के कारण बाए हाथ से खेल रही थी। गाधीजी खेल से अनभिज्ञ थे, अत वह भी सरोजिनी नायडू का अनुकरण कर बाए हाथ से खेलने लगे। इस पर श्रीमती नायडू ने कहा, "वाह, आप तो वल्ला पकडना भी नही जानते, कि बाए हाथ से खेल रहे है।"

गाधीजी ने पूछा, "फिर आप क्यो बाए हाथ से खेल रही है ?"

श्रीमती नायडू ने वतलाया कि दाएं हाथ मे चोट लगी होने के कारण ही वह बाए से खेल रही है। गाधीजी कब हार माननेवाले थे। तुरन्त बोल पडे, "मै किसी स्त्री की कमज़ोरी का नाजायज लाभ नही उठाना चाहता, इसीलिए मै भी बाए हाथ से खेल रहा हू।

× × ×

उनके निर्मल हास्य का दिल्ली का वह प्रसग भी कम दिलचस्प नही है—जवकि अन्तर-एशियाई सम्मेलन मे आये हुए तिब्वती प्रतिनिधि एक दिन दिल्ली उनसे मिलने आये थे। उन्होने वापू को अनेक वस्तुए भेट मे दी, इनमें वारीक दो पट्टिया भी थी। वापू ने पूछा कि ये कहा की वनी है ?

किसी ने कहा, "चीन की।"

वापू ने पूछा, "चीन मे बुनी ही गई है या सूत भी वही कता है ?"

जव उत्तर मिला कि सूत भी वही कता है तो वापू ने मजाक के साथ कहा, "चीन की यह कौनसी लड़की है, जो इतना महीन सूत कातती है ? उसे ढूढना चाहिए। यद्यपि अव मेरी उम्र

शादी की नही है, फिर भी इतना महीन सूत कातनेवाली लड़की से तो मैं शादी कर ही लूगा।"

इस तरह के ऐसे अनेक उदाहरण है, जिनसे ज्ञात होता है कि बापू का हास्य सादगी, निर्मलता और मानवीयता से ओत-प्रोत था। हर कार्य, उपदेश, भाषण, व्यवहार, वार्ता सभी मे वह विनोद-प्रवृत्ति को सदा जाग्रत रखते थे और इस तरह अपनी मानवीयता को और भी अधिक स्वाभाविकता के साथ उजागर करते थे। कोई आश्चर्य नही कि इसी कारण वह करोडो भारतीयो के मन-मस्तिष्क पर छाये है। वे जो उनके पास है और वे जो उनसे दूर है, कोई भी उनके व्यक्तित्व के सर्वव्यापी आलोक से नही बच सके है। वह महान थे—इसलिए ही नही कि उन्होने महान कार्य किये, वल्कि इसलिए भी कि महान सफलताओ ने भी उन्हे शुष्क महत्ता की ओर प्रेरित नही किया। सहजता के कारण ही वह वडो से लेकर छोटो तक सभी का हृदय जीत सके। गाधीजी के हास्य मे भी यह सहज वृत्ति समाई हुई थी। उनका कथन था कि सार्वजनिक व्यक्ति के लिए हास्य अनिवार्य है, और हास्य व त्याग सेवक के आवश्यक गुण है।

११

अनुराग महत्त्व

एक समय था, जव गाधीजी पर लिखते हुए कलम दौडती थी। अव वह स्तव्ध होकर देखने लगती है, उसकी आखे जो-कुछ पीती है, उसका हृदय जो-कुछ अनुभव करता है, वह लिखने से दूषित होता हुआ-सा प्रतीत होता है। डर लगता है कि कही यह काठ की लेखनी और यह स्याही उस निर्मल ज्योति को धुधला न वना दे।

पहले गाधीजी का कुछ वर्णन किया जा सकता था, उनको नापने की हिम्मत की जा सकती थी, परन्तु अव वे दिन-दिन अगाध, अगम्य और अनन्त होते जा रहे है। वे अव व्यक्ति नहीं रहे, आत्मा की ज्योति ही वनते जा रहे है। अर्जुन की जो दशा अपने भगवान के विराट रूप को देखकर हुई थी, वही गाधीजी के भक्तो की होती हो तो इसमे आश्चर्य नही।

यह गाधीजी के शरीर की महिमा नही, उनकी आत्मा का प्रताप है। उनकी साधना और तपश्चर्या का फल है। वह जगत से कहता है कि साधना और तपश्चर्या जीवन मे क्या चमत्कार कर सकती है और किस वैभव को प्राप्त कर सकती है। गाधी को आप वुद्धि से समझने का यत्न न करे, यद्यपि वुद्धि—सात्त्विक-वुद्धि—उनके पास जाकर तृप्त होकर ही लौट सकती है, उन्हे श्रद्धा के वल से नापे और आत्मा की ज्योति मे परखें। वुद्धि की फिर भी एक सीमा होती है, परन्तु श्रद्धा की सीमा आजतक

किसी ने नही देखी है। बुद्धि का प्रवेश वहीतक है, जहातक मनुष्य का दिमाग काम कर सकता है, परन्तु श्रद्धा तो असल मे वहा से शुरू होती है जहा कि बुद्धि की सीमा आ जाती है। कई वार अनुभव होता है कि बुद्धि थक गई है, बुद्धि के सामने चारो ओर अन्धेरा-ही-अन्धेरा है, परन्तु श्रद्धा ने एक-वारगी प्रकाश फैलाकर मार्ग को मीलो तक चमका दिया है। हिमालय को हिला डालने की, गगा को सुखा देने की, पृथ्वी को उलट देने की, वडी-वडी क्रान्तिया कर डालने की शक्ति श्रद्धा से ही मिलती है। गाधीजी की शक्ति उनकी श्रद्धा का ही दृश्य परिणाम है।

श्रद्धा सत्य की साधना से वढती है और सत्य की सिद्धि में ही उसकी परिसमाप्ति होती है। यदि सत्य के प्रति श्रद्धा और सत्य की साधना गाधीजी मे से निकाल ली जाय तो गाधीजी के अन्य गुणो का कितना मूल्य रह जायगा? गाधीजी को जो भौतिक सफलताए मिली है, उनसे चकाचौध होने की वनिस्वत यदि हम सद्वुद्धि और श्रद्धा से उनके आदर्श का अनुकरण करेंगे तो हम भी निश्चय ही परम सिद्धि को पहुंच सकते है। भौतिक सफलताए आखिर तो हमारे आन्तरिक जगत का ही प्रतिविम्व है। गाधीजी की व्यावहारिक सफलताओ को हम उनकी आन्तरिक शक्तियो और गुणो की भाषा मे समझे; तरकीव, जोड़-तोड, दौड-धूप, हल्ला-गुल्ला, धूम-धाम, इनमे गाधीजी के गौरव को ढूढना अपने-आपको खो देना है। राजनीतिज्ञ और वुद्धिवादी अपने क्षेत्र मे कितने ही महान हो, सम्पूर्ण जीवन के प्रकाश मे उनका मूल्य मर्यादित ही रहेगा। हमें पूर्ण छोड़ अग के पीछे पूर्ण समझने की गलती से अपने को वचाना चाहिए। गाधीजी के प्रत्यक्ष जीवन का, राजनैतिक क्षेत्र से

प्राय अलग हो जाने और बुद्धिवादियो की गिनती मे न आने पर भी अक्षुण्ण महत्व भारत मे दिखाई देता है। वह हमे बरबस इसी परिणाम पर पहुचाता है।

दिसम्बर, १९३५

: १२ :

नया जीवन ही मिला

यो तो जब से महात्माजी के दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह की खबरे पढता था, तभी से मन पर यह छाप पडी थी कि गाधीजी कोई विलक्षण पुरुष है और उनकी कार्य-पद्धति भी अद्‌भुत है। परन्तु उनका प्रत्यक्ष दर्शन तो मुझे लखनऊ काग्रेस में (१९१६ मे) ही हुआ। उन दिनो वह धोती, लम्बा अंगरखा व काठियावाड़ी सफेद साफा पहनते थे और नगे पाव रहते थे। काग्रेस मे उन्होने कोई राजनैतिक भाषण नही दिया था। मुझे जहा तक याद है, कुली-प्रथा को मिटाने के पोलक साहब के प्रस्ताव का समर्थन गाधीजी ने किया था। उन्होने हिन्दी में बोलना शुरू किया। 'इग्लिश प्लीज़', 'इग्लिश प्लीज' की आवाजे आने लगी। गाधीजी ने बड़े निश्चयात्मक स्वर में कहा, "यदि एक वर्ष में आप समझने लायक हिन्दी नही सीख लेगे तो मेरा भाषण दुबारा आपको अग्रेज़ी मे सुनने को नही मिलेगा।" उनके इस भाषण, रहन-सहन तथा व्यवहार के ढंग से ही मैंने भांप लिया कि गाधी दिव्य युगान्तकारी पुरुष है।

इन दिनो मैं लोकमान्य का अनुयायी था। बचपन से ही लोकमान्य के प्रति मन मे अगाध श्रद्धा पैदा हो गई थी। 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' आदि वचनो का जबतब हवाला दिया करता था—हालाकि तब भी मेरे दिल को यह अटपटा लगता था।

क्रातिकारी देशभक्तो के वलिदानो ने हृदय पर वडा असर डाला था—यद्यपि उनके हत्याकाड आदि प्रकारो से मन पर एक उद्वेग-सा छा जाया करता था। लेकिन ज्योही गाधीजी के दर्शन हुए और सत्याग्रह के प्रभाव की झलक चम्पारन मे दिखाई दी, त्योही मेरे हृदय ने कह दिया—"यह मेरा इष्टदेव है।" लोकमान्य के प्रति इतनी श्रद्धा-भक्ति होने के कारण मेरे पूज्य चाचाजी थे। वह लोकमान्य के अनन्य भक्त थे और लोकमान्य के 'केसरी' के अलावा 'काल' और 'हिन्दू पच' नामक मराठी अखवार मगाया करते थे। ये सव अखवार लोकमान्य के अनुयायी थे। वचपन मे मै इन्हे ही पढा करता था और मेरे चाचाजी इनके लेखो का मर्म मुझे समझाया करते थे। वाद मे जव गाधीजी का रग मुझपर चढने लगा, तव चाचाजी और मेरे वीच 'गाधी वनाम तिलक' अक्सर विवाद का विषय वन जाया करता था। वह गाधीजी की साधुता को तो वहुत सराहते थे, लेकिन कहते थे कि दुनिया के मामलो मे अन्त मे लोकमान्य का रास्ता ही कामयाव होगा। मगर मेरी धारणा दिन-दिन इसके विपरीत दृढ होती गई, यहातक कि १९२१ मे तो मै खुद महात्माजी के आश्रम, सावरमती मे जा पहुचा।

गाधीजी के सत्य की तेजस्विता, निर्भीकता, दुर्दमनीयता तथा अवाधगतित्व का और अहिसा की मृदु-मधुरता, हृदयाकर्षणता, शीतल-स्निग्धता, इन परस्पर विरोधी गुणो का और इनके गाधीजी के जीवन मे हुए सामजस्य का मेरे चित्त पर गहरा असर पडा। सत्य अपने सत्त्व की रक्षा के लिए और अहिसा दूसरे के सत्त्व को सुरक्षित रखने के आश्वासन के रूप में मुझे जीवन के लिए विल्कुल अनिवार्य नियम मालूम हुए।

यह वात मेरे हृदय मे पैठ गई। सत्य को पहले वुद्धि ने ग्रहण किया और वाद को वह हृदय तक पहुचा।

शुरू मे गाधीजी का सत्याग्रह तथा दूसरे वे नियम सव मेरी समझ मे आ जाते थे, परन्तु 'खादी' नही आती थी। मुझे इस विषय पर लिखे उनके लेख या विचार पढने की रुचि ही नही होती थी। खादी-सम्बन्धी लेखो को छोडकर सारा 'यग इण्डिया' व 'नवजीवन' पढ जाया करता था। कहता था, "खादी का क्या वाहियात झगडा महात्माजी ने खडा कर दिया है।" स्वदेशी का मै आदी था—१९०६ से ही मैने स्वदेशी-व्रत ले रखा था, लेकिन न जाने क्यो खादी के प्रति मन मे अजीव अरुचि थी। पर जव 'हिन्दी नवजीवन' के लिए खादी-सवधी लेख मजबूरन पढने पडे और उनका अनुवाद भी करना पडा, तव उसका मर्म हृदय में बैठ गया और अव मै यह मानता हू कि ससार को महात्माजी की दो देने है, एक अहिंसा और दूसरी खादी। मेरा यह दृढ विश्वास है कि हिन्दुस्तान ही नही, पारस्परिक झगडो के, फिर वे कुटुम्ब के हो, सस्थाओ के हो, समाज के हो, या राष्ट्रो के हो—निपटाने का अहिंसा से बढकर कोई सरल, स्थायी मार्ग या तरीका नही है, और समाज की विषमता को मिटाने का, परस्पर ईर्ष्या, स्पर्धा, द्वेष और आर्थिक कलह न होने देने का, खादी से बढकर दूसरा साधन नही है। इसलिए गाधीजी अव खादी को अहिंसा का चोला या प्रतीक कहने लगे है। खादी का अभिप्राय यहा हाथ की वनी चीजो से या उनके सिद्धान्त से है।

सबके हृदय जीत लेने का अजीब जादू गाधीजी में है। यह उनकी अहिसा का चमत्कार है। हर बात की गहराई में जाकर उसके सब पहलुओ की जानकारी हासिल करके तब निचोड निकालना या निर्णय करना भी उनका एक बडा गुण है, जो उनकी सत्य की साधना का फल है। उससे वे खुद भी धोखे से बचते है तथा दूसरो के साथ न तो अन्याय होने का डर रहता है, न ग़लत निर्णय का।

गाधीजी के दिमाग को मैने एक महान राजनीतिज्ञ और तत्त्व-चिन्तक का, हृदय को स्नेहमयी माता का, आत्मा को एक ज़बरदस्त सत्याग्रही या बलिष्ठ साधक का पाया है।

मुझे तो उनसे नया जीवन ही मिला है, हालाकि मुझे अपनी साधना या जीवन की गति-विधि से बिलकुल सतोष नही है। प्रकाश तो मुझे मिल रहा है, पर बल की कमी महसूस करता हू। यह विश्वास अवश्य है कि बापू के आशीर्वाद से वह मिलकर रहेगा।

१९४०

: १३ :

इसका रहस्य क्या है?

ससार मे अवतक कोई ऐसा महापुरुष नही हुआ, जिसके जीवन-काल मे उसे इतना महत्त्व मिला हो जितना महात्मा गाधीजी को मिला है। इसका क्या रहस्य है? मेरी राय मे इसका श्रेय उनकी अहिसा को मिलना चाहिए। आप पूछेगे, क्या बुद्ध, महावीर, ईसामसीह, अहिसा-धर्मी नही थे? हा थे, लेकिन अहिसा की धारणा, अहिसात्मक संगठन तथा कार्यक्रम सबको जोड़े तो उनसे गाधीजी का नम्बर वढ़ जाता है। बुद्ध की 'अहिसा' मे किसी ने मास अपने भोजन के लिए पकाया हो और वह भिक्षा में आ जाय तो उसे ग्रहण करने का निषेध नही था। गांधीजी की अहिसा ऐसी अप्रत्यक्ष ज़िम्मेदारी से भी किसी को मुक्त नही करती। इस अर्थ में उनकी अहिसा की धारणा बुद्ध की अहिसा-धारणा से आगे वढ़ जाती है, अधिक सूक्ष्म और व्यापक है। महावीर जितने स्वय अहिसा के साधक या सिद्ध थे, उतने सयोजक नही थे। ईसामसीह के जीवन मे जितनी अहिसा की चमक मिलती है, उतना उसका विधान, सगठन, कार्यक्रम नही। महात्माजी के जीवन मे तीनो वाते वहुत वड़े पैमाने पर मिलती है—इसीसे उनका व्यक्तित्व केवल एक सत का, एक सिद्ध का, एक उपदेशक का नही रह गया; वल्कि एक महान आध्यात्मिक स्फूर्तिदाता, धार्मिक सुधारक, समाज-व्यवस्थापक और राजनैतिक युग-नेता का व्यक्तित्व वन

गया है। उनकी अहिंसा-साधना ने उसमें सारे जगत के मानवो के लिए एक महान आकर्षण, एक अद्‌भुत मोहिनी, एक विलक्षण सान्त्वना तथा शान्ति का भाव पैदा कर दिया है। ससार मे वल के प्रचारक और समर्थक नेता हुए है, जिन्होने अपने शस्त्रास्त्र से वडो-वडो के मद और गर्व का खण्डन कर डाला है, परन्तु किसी के शरण आने पर भी गौरवान्वित होने के वजाय उलटी अधिक नम्रता का अनुभव करनेवाला व्यक्ति ससार मे गाधी के सिवा शायद ही दूसरा हुआ हो। उनके नजदीक 'विजय' गर्व की वस्तु नही, अधिक नम्र वनने का अवसर है। जव कभी भी उन्हे कही सफलता मिली है, उन्होने अधिक नम्रता के साथ ईश्वर की प्रार्थना की है। उन्होने मनुष्य के शरीर पर नही, उसके हृदय पर राज्य स्थापित करने की कोशिश की है। आइये, आज उनकी जयन्ती के अवसर पर हम भी मनुष्यो को वश मे करने की नही, उनके हृदयो को जीतने की साधना का सकल्प करे।

लेकिन अपनी वर्ष-गाठ के अवसर पर खुद गाधीजी हमसे क्या चाहते है? चरखा चलाओ, खादी का प्रचार करो। जव पहले-पहल उन्होने चरखा और खादी का नाम लिया, लोगो ने उन्हे मूर्ख कहा। आज भारत के वडे-वडे वुद्धिशाली नेता खादी के प्रचारक है। खादी का मन्त्र देकर गाधीजी ने हिंदुस्तान को ही नही, सारी दुनिया को आर्थिक गुलामी और सामाजिक विपमता से छूटने का अचूक उपाय वताया है। मानव-जाति की आज सवसे वडी समस्या क्या है? यह इतना भीषण अमानुष-रक्तपात यूरोप की भूमि पर क्यो हो रहा है? अकेले हम धनैश्वर्य के भोगी रहे—इस लिप्सा के कारण। इसने ससार

को 'प्रभु' और 'दास' वर्गो मे बाट दिया है। इस विषमता को मिटाने का सामर्थ्य अकेली खादी मे है। गाधीजी की खादी एक कोरा कपडा नही, एक महान सिद्धान्त है, जो अपने प्रभाव और परिणाम मे बडा क्रातिकारी है। वह कहता है कि जवतक धन और सत्ता एक केन्द्र मे रहेगी, तवतक सच्ची जनसत्ता स्थापित नही हो सकती। धन को एक केन्द्र मे प्रतिष्ठित करने का नाम है पूजीवाद और सत्ता को एक केन्द्र मे स्थित करने का नाम है साम्राज्यवाद। दोनो को मिटाना हो तो धनसत्ता को विकेन्द्रित करना पडेगा। यह खादी और ग्रामोद्योग के द्वारा ही हो सकता है, बडे-वडे कल-कारखानो से नही। भले ही यह वात हमें अटपटी और आज असभव-सी लगती हो, यदि हम जीवन की ऊपरी चकाचौध से वचकर उसकी वास्तविक आवश्यकताओं पर विचार करे, उन्हीकी पूर्त्ति के लिए समाज मे अर्थ और राज-व्यवस्था की ज़रूरत है, इस बात पर ध्यान रखे तो खादी अर्थात हाथ-काम या गृह-उद्योग का महत्त्व तुरन्त समझ मे आ जावेगा।

सारी मानव-जाति को अभी भूल जाय तथा हिन्दुस्तान के हितो और प्रश्नो का ही विचार करे तो खादी आज काग्रेस-क्षेत्र मे, जो कि भारत का और उसकी जनता का वास्तविक प्रतिनिधि-क्षेत्र है, विवादास्पद विषय नही रह गया है। किसी-न-किसी कारण से सव खादी की उपयोगिता मानते है। अतएव, गांधी-जयन्ती के इस पुण्य पर्व पर 'स्वराज्य' के तमाम पाठको का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे गाधीजी की महान देन 'अहिसा' का मनन करे और जिस खादी को उन्होने अहिसा का प्रतीक वताया है, उसके प्रचार मे कोई कसर वाकी न रखे।

सितम्बर, १९४१

१४ .

सत्य का उपासक

महात्मा गाधी से बढकर निडर, साहसी और भयकर सत्य का उपासक शायद ही कोई ससार में पैदा हुआ हो। सत्य का अर्थ है, जो कुछ दरअसल है उसे वैसा ही देखना, पाना और वैसा ही बताना। अतएव सत्य नग्न, निरावरण, निर्बाध और नि सग ही हो सकता है। ज़रा भी मिलावट हुई, छिपने-छिपाने की कोशिश हुई, अटकना-अटकाना हुआ, चिपकने और चिपकाने की प्रवृत्ति हुई कि सत्य में, सत्य की साधना मे खामी आ गई। सत्य को सूर्य की तरह समझिये। सूर्य जैसे अपने तेज से प्रकाशित और प्रज्ज्वलित रहकर ससार के अनेक कामो, प्रवृत्तियो व सुखादि का कारण बनता है, परन्तु स्वय निरावरण, निर्बाध और नि सग रहता है, वैसे ही सत्य और सत्यमय हो जानेवाला व्यक्ति अपने तेज से आप ही जलता, जागता, चलता और चलाता है। मुझे ऐसा लगता है कि गाधीजी अव सत्य की साधना मे उस जगह पहुच गए है, जहा अहिंसा का छोर या मिश्रण या अनुपान खत्म होता है और केवल सत्य-ही-सत्य बाकी रह जाता है।

अहिंसा की आवश्यकता मनुष्य या समाज को तबतक और तभी तक है, जबतक उसके सामने जगत और जगत की महत्ता है। दूसरे शब्दो में, जबतक वह अपने को जगत से पृथक मानता है, जबतक हम दो है, तबतक हमारा परस्पर सम्बन्ध कैसा रहे,

इसका निर्णय और नियमन करने की जरूरत रहती है। यह निर्णय और नियम अहिसा है। जव जगत से हम अभेद-भाव अनुभव करने लगते है, अर्थात जव व्यक्ति समाजरूप, व्यष्टि समष्टि रूप हो जाता है तो अहिसा का लोप होकर सत्य की स्थापना हो जाती है।

गाधीजी सत्य की साधना के लिए सत्यरूप हो जाने के लिए पैदा हुए है और जी रहे है। इस साधना को उन्होने अहिसा से शुरू किया और इसकी समाप्ति सत्य मे होने जा रही है। सत्य का साधक एकमात्र सत्य को ग्रहण करना और पकड़ रखना चाहता है। उसके अलावा और उससे भिन्न, प्रत्येक वस्तु को वह छोड़ने और देने के लिए तैयार रहता है और ऐसी हिम्मत रखता है। मै समझता हू कि गाधीजी मे वह साहस और शक्ति है। सत्य के लिए ससार के तमाम कष्टो, रोषो, उपहासो, दुर्वचनो, वदनामियो और भयकरताओ को प्रसन्नता से सहने का सामर्थ्य मै गाधीजी में देखता हू।

सत्य का साधक ससार से निरपेक्ष हो जाता है, वह ससार से अपने लिए किसी वात की चाह नही रखता, परन्तु ससार के अभाव-अभियोगो और कष्टो के प्रति उपेक्षा नही दिखलाता। गाधीजी की भी अपने लिए अव जगत से कोई चाहना नही रह गई है। जगत के तमाम आकर्षण उनके लिए तुच्छ और अनाकर्षक हो गए है। परन्तु जगत के दु खो और कष्टो का ध्यान उन्हे निरन्तर रहता है। संसार से विरक्त होने का अर्थ यह नही है कि संसार के दु खो और कष्टों के प्रति उपेक्षा भाव आने लगे, वल्कि यह है कि ससार के किसी सुख और आकर्षण की हमें चाह न रहे। इस अर्थ में गांधीजी को हम परम विरक्त कह

सकते है और ज्यो-ज्यो उनकी यह विरक्ति परिपूर्ण होती जायगी, त्यो-त्यो वह ससार-सेवा के अधिक सत्पात्र वनते जायगे। गाधीजी की अनेक चेष्टाओ, लक्षणो और प्रवृत्तियो को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि उनमे सत्य का अवतार हुआ है और वह पूर्णता की ओर वढ रहा है।

गाधीजी के पुण्य जन्म-दिवस पर हमे उनके जीवन से कार्य-बोध लेना हो तो वह यही कि सत्य के सामने सारा ससार तुच्छ है और सवकुछ छोडकर सत्य को ही पकड रखने की इच्छा हममे पैदा हो और ऐसा साहस हमे प्राप्त हो। सत्य की यह उपलब्धि हमे अहिसा की परिपूर्णता से ही हो सकती है। सत्य की जिस साधना मे अहिसा की उपेक्षा हो, उसमे अवश्य कोई विकार किसी-न किसी रूप मे असत्य घुसा या छिपा हुआ होना चाहिए। अहिसा की परिणत अवस्था का ही नाम सत्य है। जव हम सत्य को पा लेते है तो अहिसा उपेक्षित नही, वल्कि अनावश्यक और निरर्थक हो जाती है, यह वात हमे भुला देनी चाहिए।

अक्तूबर, १९४५

: १५ :

ईश्वर के निकट

१

आगे क्या करेंगे !

महात्माजी का यह उपवास पिछले उपवासो की अपेक्षा अधिक शुद्ध, ईश्वरमय था। किसी तप मे जब कोई ऐहिक अभिलाषा नही रहती, कौन क्या कर रहा है, यह जानने की उत्सुकता नही रहती, तब वह शुद्ध, ईश्वर के समीप ले जानेवाला, कहलाता है। महात्माजी ने एक मित्र से कहा था कि इस उपवास मे मुझे जिज्ञासा तक नही होती कि लोग क्या कर रहे है। जिन लोगो ने दोष किये वे अपने हृदय को टटोले, उसे बदले, यही उनका उद्देश्य था। वह इस अश तक पूरा हुआ कि दिल्ली के प्रतिष्ठित हिन्दू-मुसलमानो-सिखो ने मुसलमानो को शामिल रखने का लिखित आश्वासन दिया। इस उपवास से न केवल गाधीजी पाकिस्तान की ही, बल्कि सारे ससार की दृष्टि में सच्चे साधु, अनासक्त सिद्ध हुए। इससे उनकी ससार मे कार्य करने की, भारत व तमाम भूमण्डल को अपना कार्य-क्षेत्र बनाने की शक्ति बहुत बढ गई। अब यदि वह पाकिस्तान को जा सके तो उनकी सफलता का अगला कदम फिलस्तीन व उसके बाद का चीन आदि हो सकते हैं। गाधीजी को फिर १२५ साल जीने की बात याद आने लगी है।

हिन्द को एक बडा लाभ यह हुआ है कि सरदार पटेल को

अलग तथा गाधीजी व प० जवाहरलालजी को दूसरी कोटि मे रखकर जो लोग सरदार की आलोचना करते थे या मुसलमानों के खिलाफ उन्हें वता के अनर्थ कर व करा रहे थे, उनका भ्रम दूर हो गया। खुद महात्माजी ने कहा कि यह मानना ही भूल है कि सरदार, जवाहरलाल या मैं तीनो अलग-अलग हैं। हम तीनो की भाषा अलग-अलग है, पर मतलव सवका एक ही है। जवतक यह त्रिमूर्त्ति एक है, तभी तक भारत का भाग्य सलामत है।

इस उपवास के वाद लोगो को फिर अहिंसा मे आस्था होने लगी। 'प्रेम के जादू' का असर उनपर होने लगा। हिन्दू मुहल्लो मे मुसलमानो के स्वागत के दृश्य दिखाई देने लगे। नरक का द्वार वन्द होता व स्वर्ग का खुलता दिखाई देने लगा।

अव सवाल होता है कि गाधीजी आगे क्या करेंगे? क्या पाकिस्तान जायगे?

२४ जनवरी, १९४८

२

मन्दिर में नहीं—हृदय-मन्दिर में

गाधीजी तो स्वर्ग को चले गए और उन्हे भेजा एक हिन्दू ने अपनी पिस्तौल की गोलियो से! अंग्रेज़ और मुसलमान जव उन्हें पूज रहे थे, तव एक हिन्दू ने एक 'आदर्श' हिन्दू को दुनिया से मिटा दिया, और उस हत्यारे के साथी और भी कई लोग है, शायद कुछ सस्थाए भी हो। तव तो एक व्यक्ति को क्या कोसें? महात्माजी होते

तो कहते—उन्होने मुझे दुष्ट समझा, मार डाला, तो उनके लिए भगवान से प्रार्थना करो—उनका हृदय वदलो—अपनी आत्मा शुद्ध करो। जवतक कोई हमे अपना शत्रु समझता है, तवतक वह हमारी ही कमी का—हमारी अहिसा-साधना की कमी का—लक्षण है। वापू की यह वाणी हमारी समझ मे तो आती है, हमे ऊचा उठने की जवरदस्त प्रेरणा करती है, फिर भी हमारे पाव लडखडाने लगते है। वापू, हमे वल दो!

अव क्या करे? रोवे? हताश होकर बैठ जाय? तव तो हम वापू की आत्मा को भी मार डालेगे। गोडसे ने तो शरीर को मारकर उनकी आत्मा का वधन तोड डाला—उसे अनन्त विश्व मे अपना काम करने के लिए मुक्त कर दिया। हम असहिष्णु, प्रतिहिसक, निराश वनकर, क्या अपने को उनकी आत्मा का हत्यारा सिद्ध करेगे? वापू ने अपने जीवन मे जो चमत्कार दिखाये, उनकी मृत्यु से प्रेरणा पाकर जव हम उससे अधिक चमत्कार दिखावेगे, तभी उनके सपूत कहलाने के अधिकारी होगे।

तो हम क्या करे? सव गाधीवादी व गाधी-भक्त सत्य व अहिसा को अपना ध्रुवतारा वनाकर एक सूत्र मे बध जाय। काग्रेस उनका जीता-जागता स्मारक वने। 'राम-राज्य' की स्थापना वर्तमान सरकार का लक्ष्य हो। हिन्द को आदर्श राष्ट्र वनाकर पाकिस्तान या दूसरे पडोसी राज्यो को यह अनुभव होने दिया जाय कि हिन्द उनका अगुआ है। महात्माजी की मूर्त्ति हम मन्दिरो मे, भवनो मे नही, वल्कि अपने हृदयो मे विठावे और उनके उपदेश हमारी जवान से नही, वल्कि जीवन के एक-एक कण से ध्वनित हो। हम कितना काम करते है, इसका

हिसाव रखने की अपेक्षा कितनी शुद्धता से करते है, इसका हिसाब प्रत्येक व्यक्ति रखे। यदि हम ऐसा करेंगे तो हम अनुभव करेंगे कि बापू हमसे दूर नही गये, हमारे ही बीच जीते-जागते मौजूद है।

३१ जनवरी, १९४८

. १६

सच्चा स्मारक

अपनी वीरोचित मृत्यु के वाद महात्माजी भारत के ही नही, सारे विश्व के हृदय-सम्राट वन गए। ससार के कोने-कोने से जो हार्दिक श्रद्धाजलिया वरस रही है, वे यही सावित करती है। ऐसे महापुरुष का समुचित स्मारक वनने या वनाने की भावना किसके मन मे उदय न हुई होगी, या होती हो? कई सुझाव अवतक अखवारो मे आ चुके है। यह स्वाभाविक ही है। परन्तु सोचना यह है कि वह स्मारक क्या हो? कोई भी पार्थिव स्मारक, चाहे वह कितना ही वडा हो, क्या उस महात्मा की विभु-सर्वव्यापी आत्मा को व उसके विश्व-व्यापी आदर्श को पहुच सकता है? वह तो समुद्र या आकाश को घड़े मे भरने-जैसा है। अजमेर मे एक मित्र ने स्मारक का जिक्र किया तो मेरे मुह से तुरन्त निकला—वापू का कोई भौतिक स्मारक नही हो सकता। वापू ऐसे स्मारको के खिलाफ थे। अव इतने दिनो के चिन्तन के वाद मेरा यह विचार और भी दृढ हुआ है कि मेरी समझ से उनका कोई सच्चा स्मारक हो सकता है तो 'राम-राज्य' की स्थापना ही हो सकता है। हमारी सरकार व हमारी काग्रेस दोनो—'राम-राज्य' को अपना अन्तिम लक्ष्य घोषित करके उनके स्मारक की नीव डाले। इसके नजदीक पहुचनेवाला दूसरा स्मारक हो सकता है उनके 'एक विश्व' के सदेश की पूर्त्ति, जो उन्होने एशियाई सम्मेलन के अवसर पर दिया था। और भी

संकुचित दायरे में रहना चाहे तो कांग्रेस उनका एक स्मारक बन सकता है, बशर्ते कि वह उनके निधन के पहले सुझाये विचारों को अपना ले और तदनुसार अपना संगठन बनावे। मैं समझता हूं कि इससे भिन्न किसी भौतिक स्मारक की कल्पना या योजना करना न तो उनके गौरव के अनुकूल होगा, न उनकी इच्छा के ही। क्या अच्छा हो कि हम किसी भौतिक लेकिन सस्ते स्मारक की अपेक्षा 'राम-राज्य' की स्थापना-जैसे सच्चे परन्तु कष्ट व व्ययसाध्य ही नहीं, जीवन-साध्य स्मारक को खड़ा करें।

: २ :

बापू का स्मारक बनाने के संबंध में कई सुझाव आये हैं। जो भी भौतिक स्मारक उनका बनाया जायगा वह उनकी महिमा के मुकाबले में कम ही होगा। भौतिक स्मारक बनाना मानो बापू को बहुत छोटे गज से मापना है, या सस्ता सौदा कर लेना है। केवल ब्याज देकर हमें उनसे उऋण हो जाने का प्रयत्न न करना चाहिए, 'देवो भूत्वा देवं यजेत्', उनके सपूत बनना ही उनका सच्चा स्मारक है। उनकी आत्मा की ज्योति अपने अंदर संचार करना, उनके गुणों का अनुकरण करना, उनके अधूरे कार्यक्रम को पूरा करना, उनकी इच्छाओं को मान देना, उनका सपूत बनना है। धन इकट्ठा करना या उनकी मूर्तियां व भवन बना देना कौन कठिन है? धन इकट्ठा किया जाय तो उनके कामों के लिए न कि उनकी मूर्तिपूजा के लिए, कोई स्मारक खड़ा किया जाय तो उनके आदेश, उपदेश, आचार के पालन व प्रचार के लिए, न कि कोरे प्रदर्शन के लिए। अतः हम तो किसी भी भौतिक स्मारक को पसंद नहीं करते। परन्तु

हम जानते है कि देश व दुनिया के भावुक भक्तो को सगुण साकार उपासना के विना सन्तोष न होगा। अत यदि स्मारक-कमेटी कोई ऐसा स्मारक वनाना ही चाहे तो उसका सवसे अधिक निर्दोप रूप शिला या स्तम्भ-स्मारक ही हो सकता है, जिसपर वापू के आदर्श सिद्धान्त, उपदेश व वचन खुदे हो। वे हमारी कला के भी अच्छे नमूने हो सकते है। जो पुस्तको के द्वारा वापू के विचारो का प्रचार निषिद्ध नही मानते,उन्हे शिला या स्तम्भो के प्रकार पर भी आपत्ति नही हो सकती।

फरवरी, १९४८

१७ :

सुयोग्य वारिस बनें

महात्माजी की स्तुति उनके जीवन-काल मे ही इतनी हो चुकी थी और उनके अवसान के वाद जो उनके स्तुति-स्तोत्रो और लोगो के भक्तिभाव का जो प्रदर्शन तरह-तरह से हुआ, उसमे अव और वृद्धि करना अनावश्यक है। इस विषय मे वह अवतक के तमाम महापुरुषो व अवतारो से आगे निकल गए। वह केवल एक सस्था, एक सगठन, एक वल व प्रकाश ही नही, अपने-आप मे एक युग, वल्कि विश्व थे—जीवन का कोई अग नही, जिसे उन्होने अपने जादुई स्पर्श से सजीव न कर दिया हो। परन्तु उनके कोरे गुण-गान से हमारा कर्तव्य-भार हल्का नही हो सकता। यह तो केवल अर्घ्य-प्रदान हुआ। उनके स्मारक के भिन्न-भिन्न आयोजन करना भी सस्ता छुटकारा ही समझना चाहिए, यद्यपि वे मानव के भक्ति-भाव की पूर्त्ति के आवश्यक-जैसे अक है। प्रश्न यह है कि अव उनके प्रति हमारी श्रद्धा-भक्ति क्या रूप ग्रहण करे? वह ज्ञान, भक्ति व कर्म की त्रिवेणी थे। हमारे देखते-देखते वह नर से नारायण हुए। सदियो के गुलाम एक देश को विना शस्त्रास्त्र के आजाद करा दिया—एक नवीन आदर्श समाज की दागवेल डाल गए और उसका मार्ग दिखा गए। हमे इस समय अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक ज्ञान कराने के लिए, उनके वे स्मृति-चिह्न काफी है। इनमे पहली वात है खुद हमारे जीवन का निर्माण,

दूसरी नव-समाज-निर्माण मे उसका विनियोग। महात्माजी ऐसा समाज वनाना चाहते थे, जिसमे कोई किसी को दबाने न पावे, सव स्वतत्र रहकर एक-दूसरे के काम आवे। इसे उन्होने 'राम-राज्य' कहा है। यह तभी वन सकता है, जव हम अपना जीवन सचाई के साथ व्यतीत करते हुए दूसरे के जीवन को वनाने मे उसे लगावे। पहला सत्य की साधना से व दूसरा अहिसा की साधना से हो सकता है। इसीलिए उन्होने सत्याग्रह पर—सत्य व अहिसा की साधना पर—इतना जोर दिया है। सच्चे प्रजातत्र की नीव व लक्षण अहिसा ही है। अत अव से हम अपने जीवन को सत्याग्रह की तराजू पर तौलते रहे। यह विना सतत-जाग्रति के नही हो सकता। इसमे वापू का जागरूक जीवन हमारा पथदर्शक वन सकता है। केवल व्यक्ति या व्यष्टि-रूप मे हम महान या आदर्श वन जाय, यह काफी नही है। समाज या समष्टि मे अपने को मिला देना हमारे जीवन की कृतार्थता है। व्यष्टि समष्टि की इकाई है। समष्टि मे समावेशन उसकी परिपूर्णता है—यही मोक्ष है। व्यक्तिगत उन्नति हमारी यात्रा की आधी मजिल है, समष्टिगत जीवन पूर्ण-साधना या पूरी मजिल है। महात्माजी ने न केवल अपने जीवन को वनाया, वल्कि उसका एक-एक क्षण देश, समाज, समष्टि के अर्पण किया —इसीमे इन्होंने जीवन की कृतार्थता मानी। यह हमारा दीपस्तम्भ होना चाहिए।

इससे हमारा लक्ष्य स्पष्ट हुआ—हमे उसका ज्ञान हुआ। पर ज्ञान के साथ लगन होनी चाहिए। उसके विना कार्य मे वल नही आ सकता, वह सफल नही हो सकता। लगन भक्ति से आती है। भाव-शुद्धता का नाम भक्ति है। अपना कोई

स्वार्थ न हो, जो-कुछ किया जाय वह अपने इष्ट के लिए, लक्ष्य के लिए हो—यह भक्ति का मर्म व हार्द है। यदि हम महात्मा-जी के भक्त है तो हमारा जीवन—प्रत्येक कार्य—उन्हीके लिए, उन्हीके प्रिय कार्य या लक्ष्य के लिए, होना चाहिए। उसमे अपने व्यक्तिगत सुख-सुविधा का विचार वाधक न होने देना चाहिए।

भक्ति से प्रेरणा व वल तो मिलता है, पर सफलता काम करने से ही होती है। अत हमारा जीवन सतत कर्ममय होना चाहिए। ऊटपटाग कर्म करने या करते रहने से सफलता नही मिलती। उसमे विवेक व दक्षता से काम लेने की जरूरत है। इसमे गाधीजी का जीवन हमारे लिए आदर्श है। वह विवेक व दक्षता की मूर्त्ति थे। उनका सारा जीवन इसका उदाहरण है।

कोरा कर्म नही, कार्य-योजना, कार्यक्रम होना जरूरी है। अपने तथा समाज दोनो के जीवन को वनाने का कार्यक्रम होना चाहिए। इसमे उनके वताये खादी व चर्खे का स्थान वहुत ऊचा है। उन्होने चर्खे को सूर्य की उपमा दी व दूसरो को नक्षत्रो की, जिन्हे सूर्य के आस-पास भ्रमण करते रहना है। मौन रह-कर नियमित चर्खा कातना—योग-साधना की ही एक क्रिया है, वह यदि 'राम नाम' के नाम के साथ किया जाय तो पूरी आध्यात्मिक साधना हो जाती है। दूसरे तमाम कार्यक्रम भारत के भिन्न-भिन्न अगो की त्रुटियो को पूरा करते है। जीवन के दोष हटा दिये जाय तो जीवन परिपूर्ण ही है। समाज-जीवन के इन गड्ढो को भरने के कार्यो को ही गाधीजी ने रचनात्मक कार्यक्रम कहा है। हम आजाद तो हो गए, परन्तु अभी हमारा भारतीय समाज सम्पूर्ण, सर्वांग-सुन्दर नही हुआ है। पहले हमें

भारत मे ही 'रामराज्य' का नमूना उपस्थित करना है। ग्राम-पचायतो की स्थापना से इसकी शुरुआत करनी होगी, जैसा कि काग्रेस के नवीन विधान मे वताया गया है। चर्खा अर्थात विकेन्द्रित उद्योग 'रामराज्य' का साधन और ग्राम-पचायत का प्राथमिक स्वरूप हुआ। दूसरे शब्दो मे चर्खा द्वारा हम आर्थिक स्वतत्रता या आर्थिक प्रजातत्र की, स्वय-पूर्ण ग्राम-पचायतो द्वारा शासनिक प्रजातत्र की स्थापना करना चाहते है। केवल हाथ उठाकर या पर्ची डालकर वोट दे देने मे ही प्रजातत्र की परि-समाप्ति न हो जानी चाहिए, व्यक्ति व समाज के समूचे जीवन मे प्रजातत्र का सचार होना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब सम्पत्ति व सत्ता दोनो का ही विकेन्द्रीकरण हो।

जवतक वापू थे, तवतक तो हम दौड-दौडकर उनके पास पथदर्शन के लिए चले जाते थे। अव तो उनके उपदेश, आचरण व गुण ही हमारे पथदर्शन का काम देगे। इस दृष्टि से उनके विस्तृत जीवन-चरित्र का सग्रह, मनन व उनके गुणो का सतत अनुशीलन बहुत आवश्यक हो गया है। यही अव उनके प्रति-निधि हमारे लिए रह गए है। शरीर तो आज या कल जाता ही, परन्तु उनका जीवन-चरित्र अमर है। उनके शरीर से कही अधिक व्यापक क्षेत्र मे उसकी गति है। अत इस अमूल्य निधि के सुयोग्य वारिस वनने का हमें पूरा प्रयत्न करना चाहिए। जवतक हम ऐसा करते रहेगे, तवतक वापू हमारे अन्दर व हमारे वीच मे अमर ही रहेगे।

१८ :

गांधीवादी इलाज

बापूजी की हत्या गोडसे ने की, सारी दुनिया ने उसे बुरा कहा। फिर भी सुनते है कि गोडसे को इसपर कोई पश्चात्ताप नही है। हो सकता है कि गोडसे एक गलत आदर्श और गलत मनोवृत्ति का शिकार हुआ हो। जबतक मनुष्य किसी उचित या अनुचित उच्च आदर्श से प्रेरित न हो, तबतक वह ऐसा जघन्य कार्य नही कर सकता। इधर-उधर ऐसी गलत भावनाओ को उभाडा भी गया था, जिससे लोग ऐसे मनुष्य को ऐसे कुकृत्यो के लिए प्रोत्साहन दे। निश्चय ही गोडसे की इस कुकृति के पीछे कुछ लोगो की एक विचारधारा का, और एक मनोवृत्ति का बल है, जो गाधीजी की विचारधारा और मनोवृत्ति के प्रतिकूल है। गोडसे और उसके साथियो पर मुकदमा चल रहा है। उसके कुछ साथी भाग गए है। सरकारी कानून के मुताबिक जिनके खिलाफ जुर्म साबित होगा, उन्हे सजा दी जायगी। सवाल यह है कि हम लोगो को, जो गाधीजी के रास्ते चलना चाहते है, इन सब घटनाओ को किस दृष्टि से देखना चाहिए और इनसे क्या नतीजा निकालना चाहिए। गोडसे और उसके साथियो को सजा मिल जाने से उनके आदर्श, विचारधारा और मनोवृत्ति मे फर्क पड जायगा, यह नही कह सकते। यदि हमारा झगडा गोडसे से नही बल्कि उस आदर्श, विचारधारा या मनोवृत्ति से है, जिसके असर से गोडसे ने इतना बडा दुःसाहस किया तो हमारा हमला

उन्ही पर होना चाहिए। उसका मुकावला उन्ही तरीको से और उसी भावना से करना चाहिए, जो गाधीजी की है—अहिसा दमन मे विश्वास नही रखती, समझाने-वुझाने से अर्थात शिक्षण और कष्ट-सहन मे विश्वास रखती है। वर्तमान सरकार को गाधीजी की सरकार नही कह सकते, वह राष्ट्रीय सरकार है, अलवत्ते गाधीजी की छाप उसपर वहुत कुछ पड़ी है। अत वह अपने ढंग से गोडसे और साम्प्रदायिक कटुता का, जैसा ठीक समझे, इलाज करेगी। पर वह गाधीवादी इलाज शायद ही हो।

दण्ड, फासी या दमन हृदय-परिवर्तन के साधन नही है। फासी देने पर तो हृदय-परिवर्तन का सवाल ही कहां रहा ! अत दण्ड और दमन के मार्ग को छोडकर हमे शिक्षण का, और आवश्यकता पडने पर कष्ट-सहन करने का मार्ग स्वीकार करना चाहिए।

इसका अर्थ यह हुआ कि हमे गोडसे के विरादरीवालों मे अधिक काम करना चाहिए। जो किसी-न-किसी रूप मे अहिसा के कायल है, वह हमारा वास्तव मे कार्यक्षेत्र नही है। उन्हे तो अहिसा को सगठित करने और वलिष्ठ वनाने की प्रेरणा और सहयोग देते रहना और प्रसंगानुसार मार्ग-प्रदर्शन करते रहना काफी है। अपार धैर्य और सहिष्णुता के साथ परिश्रम हमे करना होगा।

वापू के वलिदान से जो सवक देश को, और दुनिया को मिलना चाहिए था, सो मिल गया। उनके खून सने कपडे सम्भालकर रखने से मेरी समझ से लाभ के वजाय हानि अधिक होगी। वापू के वलिदान की अपेक्षा गोडसे और उसके कृत्य की ओर ध्यान

अधिक जायगा, जिसका अर्थ यह हुआ कि उससे अहिसा की उच्च प्रेरणा मिलने के वजाय प्रतिहिसा और कटुता के भाव मन मे जमे। हमे यह भूलना नही चाहिए कि यद्यपि गोडसे ने ससार का घोर जघन्य कर्म किया है, फिर भी हमे उसका मुकावला अहिसा से करना है। वापूजी की हत्या से रोष के बजाय दया का भाव जव हमारे मन मे हत्यारे और उसके साथियो के प्रति उपजने लगे और उसे सजा या फासी दिलाने के वजाय उसपर रहम करने का भाव पैदा होने लगे, तव समझ लेना चाहिए कि हम गाधी के रास्ते पर चल रहे है।

: १९ :

पहली बरसी

बापू ने एक ओर काग्रेस के द्वारा स्वराज्य की लडाइया लडकर देश को आजाद किया, दूसरी ओर रचनात्मक सस्थाओ द्वारा नये समाज की रचना का मार्ग प्रशस्त किया। इन दोनो कामो को उन्होने अपने व्यक्तित्व के साथ दाए-बाए हाथ की तरह जोडकर एक-जीव कर दिया था। उनका शरीर एकाएक चला गया तो अस्तव्यस्तता आ जाना स्वाभाविक था। अब उनकी समन्वय-बुद्धि ही हमारी रक्षा कर सकती है और हमे आगे बढा सकती है। हमने उनके सत्य व अहिसा के मर्म को समझ लिया, रचनात्मक कामो मे भी लगे रहे, शासन-काम भी सभालते रहे, परन्तु समन्वय-बुद्धि से काम न लिया तो सामूहिकता न ला सकेगे, न बढा सकेगे। व्यक्ति व वस्तु का रूप समझने के लिए विश्लेषण की जरूरत रहेगी, परन्तु उनसे काम लेने के लिए, उन्हे एक जीती-जागती शक्ति बनाने के लिए, समन्वय की ही शरण लेनी पडेगी। अपनी विशिष्ट अहन्ताओ को नियम, मर्यादा, सयम मे लाना और व्यापक हितो का विचार प्रधान रूप से करना ही समन्वय की प्रवृत्ति है। समन्वय के बिना 'सर्वोदय' शब्द ही निरर्थक हो जाता है। 'सर्व' का अर्थ ही है 'अकेला मेरा नही।' बापू की इस पहली बरसी पर हमे बापू के नाम का नही, बापू के काम का अधिक स्मरण करना चाहिए, और काम से भी अधिक बापू की भावना-समन्वय-बुद्धि को

अधिक अपनाना चाहिए। नाम हमारे लिए सहारा है, काम वापू को सन्तोष व समाज को सुख देगा, भावना-समन्वय-बुद्धि व्यक्ति व समाज दोनो को वापू के सर्वोदय के लक्ष्य तक पहुचावेगी।

जनवरी, १९४९

. २०

गांधी-जयन्ती

गाधी-जयन्ती के उत्सव मनाये जा रहे है। चारो ओर से गाधीजी पर व्याख्यान, लेख आदि की माग हो रही है, इनकी वृष्टि-सी हो रही है। खुद उन्होने अपने और अपने आदर्श, विचार, कार्यक्रम आदि के वारे मे इतना लिखा है, उनके भक्तो, प्रेमियो, अनुयायियो ने भी अवतक उनपर इतना प्रकाश डाला है कि अव आगे क्या लिखा जाय और कैसे लिखा जाय? सूर्य का वर्णन कहातक व कैसे करे? उसकी एक-एक किरण क प्रभाव, कार्य, परिणाम को जानना, समझना, कहना, लिखना कठिन है, वल्कि असम्भव है। यही हाल गाधीजी का है—प्राय प्रत्येक महापुरुष का होता है। वह जितने प्रकट रहते है, उससे कही अधिक अप्रकट रहते है। उस अप्रकट का ही थोडा-सा अश प्रकट होता है, जिससे दुनिया चकाचौध हो जाती है। उस प्रकट को भी हम समझ ले और जितना समझ लेते है, उसे हजम करके जीवन मे चरितार्थ कर ले तो वहुत है। मुझे कुछ ऐसा लग रहा है कि गाधीजी को हजम करने की वनिस्बत व्यक्ति के कोरे यशोगान की अपेक्षा उसके विचारो को समझना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है और कोरा समझ लेने से अधिक बेशकीमती है उनपर अमल करना। गाधीजी ने हमे 'सत्याग्रह' का मन्त्र दिया—'सर्वोदय' की दिशा दिखाई। हम इन्हे समझने का कितना यत्न करते है? अपने जीवन मे, अपने घरेलू व सस्थागत

जीवन मे, उन्हे उतारने का कितना प्रयास करते है ? घर के, सस्था के, समाज के, झगडो को कितना शान्ति, सद्भाव, समझौते की भावना, पच-फैसले आदि के अनुसार निपटाते है ? गाधीजी का नाम लेकर भी, उनके भक्त कहलाकर भी, हम झूठ-सच, छल-कपट, तिकडम आदि सूक्ष्म हिसा व असत्य के साधनो से कितना वचित रहते है ? अपने से मतभेद, कार्य-भेद रखने-वालो के प्रति कितने समभाव से वरतते है ? चरखा कितना कातते है ? हरिजनो के प्रति घरोपा कितना पालते है ? ये तथा दूसरे ऐसे कितने ही प्रश्न है, जो मन मे उठते है और जिनका सही उत्तर हमे इस पखवाडे मे अपनी अन्तरात्मा से मिलना चाहिए। गाधीजी हवाई फिलासफर नही थे, कर्ममूर्त्ति थे। हम उनकी जयन्ती उनके आदर्श को समझकर उनके अनुसार चलने की दृढ प्रतिज्ञा करके ही मना सकते है। गाधीजी की विश्व-व्यापक आत्मा हमे इसीका वल दे।

१ अक्तूबर, १९४६

: २

अव की गाधी-जयन्ती ऐसे कुसमय मे आई है जव कि खुद महात्माजी को अपना जीवन एक भार मालूम होने लगा है। जिसके चिरजीव रहने की प्रार्थना हम नित्य और खासकर इस पुण्य पर्व पर परमात्मा से करते है, वह यह प्रार्थना करने लगा है कि यदि यह खून-खच्चर वन्द न हो तो भगवान मेरे इस शरीर को उठा ले। इससे अधिक उनकी वेदना का परिचय किन शब्दो मे हो ?

अत· आज के दिन हमारा पहला कर्त्तव्य है, देश मे शान्ति

स्थापित करना, जिससे भारतवर्ष को एक उच्च कोटि का राष्ट्र वनाने व उत्तम समाज-व्यवस्था कायम करने का अवसर मिले। दूसरा कर्तव्य हमारा यह है कि जिस शासन या समाज-व्यवस्था का आदर्श महात्माजी के सामने है, उसको वनाने मे खुद कातना व खुद पहनना, या कहिये ग्रामोद्योग अथवा विकेन्द्रित उद्योग-व्यवसाय का महत्त्व लोगो को समझाना। महात्माजी की कोरी स्तुति करना और उनके आदर्शो की उपेक्षा करना, उनकी जयन्ती मनाने का सही उपाय नही है। वह यदि ढोग नही तो खानापूरी जरूर है। ढोग हमे गिरावेगा, खानापूरी से न तो हम आगे वढ सकते है न आत्म-सन्तोष ही पा सकते है।

भगवान हमे इस महापुरुष के, जिसमे केवल तूफानो के सामने खडे हो जाने का ही नही, वल्कि तूफानो व ववण्डरो के मुह को मोड देने का वल है, इस क्षेत्र मे, जो आज ससार मे अद्वितीय सिद्ध हो रहा है, उसके सच्चे अनुयायी वनने का वल व बुद्धि प्रदान करे।

३० सितम्बर, १९४७

: ३ :

गाधी-जयन्ती श्रद्धा के साथ जगह-जगह मनाई गई, श्रद्धा-जलिया भी अर्पित की गई—यह सव हमारे कल्याण के लिए हुआ। गाधीजी से जो कुछ वना, जी-जान लडाकर हमारे लिए कर गए, अव हम उनके नाम पर या उनके सहारे जो-कुछ कर ले, वही हमारे काम आनेवाला है। यदि हम कोरा जवानी जमा-खर्च करके रह जाते है तो अपनी ही हानि करते है। यदि हम वास्तव मे उनके वताये मार्ग पर चलते है तो अपना ही श्रेय

साधते है। श्रेष्ठ वात तो यह है कि बोला कम जाय और किया अधिक जाय। अभी हमे अधिक कहने व कम करने की आदत पडी हुई है। यह हमे छोडनी होगी। इसके छूटने पर ही हम गाधीजी के मार्ग पर चल सकते है। खुद गाधीजी ने इसी नियम पर चलकर सिद्धि प्राप्त की थी। जो अपने को गाधीजी का अनुयायी मानते या कहते है, उनपर इसकी जिम्मेदारी सबसे ज्यादा है। उन्हे, छोटे रूप मे क्यो न हो, गाधीजी की प्रतिमूर्ति वनने का प्रयत्न करना चाहिए। गाधीजी को योजनाओ और कार्यक्रमो को चलाने की भावना के साथ-साथ गाधीजी के गुणो का अनुकरण करने व गाधीजी जैसी शक्ति प्राप्त करने का भी प्रयत्न करना चाहिए। उन गुणो व शक्तियो के अभाव मे कोरी लकीर पीटना या अहम्मन्य वनकर रह जाना ही हमारे हाथ आवेगा। अतएव हमारी राय मे तो गाधी-जयन्ती से हमे आत्म-शोधन की जवरदस्त प्रेरणा मिलनी चाहिए।

अक्तूबर, १९४८

: ४ :

गाधी-जयन्ती को वापू ने 'चरखा-जयन्ती' नाम दिया—उन्होने व्यक्ति को भुलाकर वस्तु-आदर्श को याद रखने पर जोर दिया। व्यक्ति आदर्श का प्रतीक है और होना चाहिए, जैसे कि आदर्श व्यक्ति को व्यक्तित्व प्रदान करता है। व्यक्ति अपने को मिटाकर आदर्श को उज्ज्वल रखे—व्यक्ति समष्टि मे मिले, यही स्वाभाविक स्थिति होनी चाहिए। चरखा वापू के लिए कोरा वस्त्र-साधन नही था, वह अहिसा का प्रतीक है। अहिसा-त्मक समाज-रचना (सर्वोदय) का मुख्य स्तम्भ या मेरु-मणि

है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिन्हे गाधीजी के प्रति श्रद्धा है, उन्हे चरखा कातना चाहिए और वह भी अहिंसा-साधना की दृष्टि से। चरखे द्वारा यदि हम भारत को और सारे मानव-समाज को कपडे की चिन्ता से मुक्त करे तो यह भी बहुत बड़ी सिद्धि होगी। 'सर्वोदय' के शरीर की रचना उससे होगी, परन्तु प्राण तो अहिंसा-भाव के विकास से ही उसमे आ सकता है। 'अहिंसा' के कम-से-कम दो अर्थ स्पष्ट है एक तो हम अपने उद्देश्यो व कार्यक्रमो की सिद्धि के लिए केवल शुद्ध साधनो से ही काम ले, दूसरे हम सकुचितता, वैर, द्वेष की भावना छोडकर व्यापक उदार भावना रखे व परस्पर सहयोग-वृत्ति से, सामाजिकता से काम ले। मतभेद, नीति-भेद, कार्य-भेद, होते हुए भी हम एक-दूसरे के प्रति घृणा, तिरस्कार, तुच्छता के भाव न रखे, गुण-ग्रहण-शीलता, परमत-सहिष्णुता को बढावा दे। इन मानसिक गुणो के विकास के साथ और इनका प्रतीक मानते हुए यदि हम चरखा कातते है तो अवश्य ही 'सर्वोदय' को निकट लावेगे और यही बापू के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

सितम्बर, १९४९

साबरमती आश्रम मे और सेवाग्राम मे यह काम आज भी आश्रम-वासी अपने हाथो से करते है।

लेकिन गाधीजी जिस स्वच्छता पर जोर देते थे, वह केवल ऊपरी सफाई नही है। हम लोग स्वच्छता के व्यापक अर्थ को भूलकर उसका वहुत सकुचित अर्थों मे प्रयोग करने लगे है। हम समझते है कि स्वच्छता सिर्फ इसमे है कि शरीर पर पानी डाल लिया और साफ-सुथरे कपडे पहन लिये या घर-आगन मे सफाई करली या चौके मे बैठकर भोजन कर लिया या अस्पृश्य कहने-वाले लोगो का छुआ अन्न अथवा जल ग्रहण नही किया। स्वच्छता वास्तव मे इससे वहुत गहरी चीज़ है। वह एक आदत है, साधना है, जो जीवन के हर पहलू मे प्रकट होनी चाहिए। मन, वचन और कर्म तीनो की स्वच्छता ही सच्ची स्वच्छता है। मनुस्मृति मे कहा है

दृष्टि पूत न्यसेद् पाद वस्त्र पूत जल पिवेत् ।
सत्य पूतावदेत्वाच मन पूत समाचरेत् ।।

अर्थात दृष्टि को पवित्र करके कदम वढाना चाहिए, यानी अच्छी तरह देखकर चलना चाहिए, जिससे ठोकर न लगे। जल को कपडे से पवित्र करके यानी कपडे से छानकर पीना चाहिए और मन को पवित्र करके आचरण करना चाहिए।

स्वच्छता का वास्तविक आदर्श यही है। अग्रेजी मे एक कहावत है, 'क्लीन्लीनेस इज नेक्स्ट टु गौडलीनेस' अर्थात स्वच्छता ईश्वरोपासना का दूसरा रूप है। इसका तात्पर्य यही है कि यदि हम मन, वचन, और कर्म से स्वच्छ है तो उसका उतना ही महत्त्व है जितना कि ईश्वरोपासना का। कारण यह है कि इस तरह की स्वच्छता का सारे समाज पर अच्छा असर पडता है और

इस प्रकार मानव-सेवा ईश्वर-भक्ति से किसी प्रकार कम नहीं है, बल्कि सेवा-रहित भक्ति केवल आडम्बर व ऊपरी या दिखावटी स्वच्छता भी आडम्बर है।

हमारे देश के लोगों में स्वच्छता की यथार्थ भावना बहुत कम देखने में आती है। चाहे जहां थूक देना या मल-मूत्र त्याग करना, घर का कूड़ा-कचरा गली में फेंक देना, सड़कों पर फलों आदि के छिलके डालना, बाग-बगीचों में जूठे कागज-दोने आदि बिखेरना साधारण बातें हैं, जिनकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता। यदि कोई इन पर आपत्ति करता है, तो उसे उल्टा मूर्ख बनाया जाता है। यह बड़े खेद और शर्म की बात है। सुना है, विदेशों में इस तरह गन्दगी लानेवालों के खिलाफ़ बहुत सख्त कार्रवाई की जाती है। कहते हैं, मोटर में बैठी हुई एक महिला ने सड़क पर पान की पीक थूक दी तो उसी के हाथों से साफ कराई गई। कुछ देशों में एक प्रकार का सैनिक-शासन है, परन्तु हमने

ही जोर दिया जाय, वरना स्वच्छता-सप्ताह की वास्तविक सफलता इसी वात मे भी आकी जायगी कि उससे लोगो मे स्वच्छता की भावना कहा तक जाग्रत होती है। गाधीजी ने अपने उदाहरण से और अपने व्यवहार से स्वच्छता का जो आदर्श हमारे सामने रखा है, अर्थात हमारे मन, वचन और कर्म तीनो मे स्वच्छता हो, उसी आदर्श का पालन करके हम अपने देश को स्वच्छता का नमूना वना सकते है।

अक्तूबर, १९६२

तीस जनवरी

बापू को गये ९ साल हो गए। जीवित रहकर उन्होंने मनुष्य-जाति की जो सेवा की, वह तो अपूर्व थी ही, लेकिन मरने के बाद मनुष्यता को जितना उन्होंने ऊचा उठाया, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। उन्हे गोली लगने के पहले, जो लोग एक-दूसरे को अपना दुश्मन मानते थे वे गोली लगने के बाद से अपने-को दोस्त मानने लगे। यह जादू उनकी मृत्यु ने कर दिखाया। मरने के पहले यह समझा जाने लगा था कि गाधीजी की वाणी मे अब वह जोर नही रहा और वह खुद भी यह महसूस करने लगे थे, और इसीलिए अपनी सार्वजनिक प्रार्थना-सभा तक मे उन्होने एक रोज भगवान से यह प्रार्थना की कि भगवान मुझे जल्दी उठा ले, यहातक कि व्यथित होकर प्रार्थनार्थियो से भी कहा कि मेरे साथ तुम भी भगवान से प्रार्थना करो कि वह मुझे उठा ले। भगवान ने कुछ ही दिनो के अदर उनकी प्रार्थना सुन ली और वह भी ऐसे विलक्षण तरीके से कि जीवित रहकर जो गाधी बेकार-से साबित होने लगे थे, वह मरने पर एक सजीव और शक्तिशाली जीवन और प्रेम का स्रोत बन गए। मनुष्य जीवित रहकर ही सेवा नही करता, बल्कि कई बार मरने पर उससे भी श्रेष्ठ सेवा करता है। आगे रहकर ही सेवा नही हो सकती, पीछे रहकर भी कई बार बड़ी सेवा हो सकती है। भागदौड कर ही बहुत बडी सेवा नही हो सकती. बैठे रहकर

भी बडी सेवा हो सकती है। हाथ-पाव हिलाना तो सेवाभाव का एक प्रदर्शनमात्र है। यदि मन मे अखड और अटूट सेवा-भाव है तो मनुष्य की वाह्य क्रियाए उसका निदर्शनमात्र है, स्वय वे सेवा-भाव की सूचक नही है। वह वहुत वडी असेवा या कुसेवा की भी सूचक हो सकती है। वापू के जीवन और मरण दोनो इसके जीते-जागते उदाहरण है।

वापू जिस अवस्था मे एकाएक चले गए, वह ऐसी नही थी कि वह पूर्णकाम हो गए थे। उनके मन मे एक-सौ वर्ष जीने की लालसा थी और वह भी इसलिए कि वह अपने सामने भारत मे 'रामराज्य' ला देना चाहते थे और पृथ्वी पर स्वर्गराज की झलक दिखा देना चाहते थे। ऐसी दशा मे यह स्वाभाविक है, या हम ही क्यो न यह कल्पना करे कि यदि वापू की आत्मा यह देखना चाहती है या देख रही है कि मेरे वाद मेरे भारत का दुनिया मे क्या हाल हो रहा है तो कोई ताज्जुव नही। मै समझता हू कि जरूर उनको इस वात से सतोप होगा कि उनका एक वारिस—जवाहरलाल—भारत मे ही नही, सारे ससार मे सफलतापूर्वक उनके शान्ति-सन्देश को प्रसारित कर रहा है। और उनका एक पट्ट शिष्य—विनोवा—'सर्वोदय' के आदर्श को साकार करने के लिए प्राणपण से प्रयत्न कर रहा है। अपने इन दो मानसपुत्रो की श्रेष्ठता और योग्यता को देखकर उनकी छाती हर्प से फूली न समाती होगी। बापू का एक शरीर ससार मे नही रहा, परन्तु निस्सदेह उनकी शक्ति और तेज दो शरीरो मे समा गए या आविर्भूत हुए। एक ने अतर्राष्ट्रीय जगत की नब्ज़ अपने हाथ मे ले ली और दूसरे ने भारत की नब्ज पर इस तरह हाथ रखा है कि वह सारे विश्व के लिए शान्ति और समता

का मार्ग-दर्शक हो रहा है। भारत के ये दोनो महापुरुष इस समय अलग-अलग शरीरो मे रहते हुए, अलग-अलग मुखो से अपनी अलग-अलग भाषा बोलते हुए, अपने बापू के ध्येय को पूरा कर रहे है। जवाहरलालजी ने ससार के दो महान बलिष्ठ और परस्पर युद्ध से आशकित और भयभीत राष्ट्रसमूह को अपने पचशील सूत्र के द्वारा पकडकर रोक रखा है। वे न केवल उन महान टक्कर को रोक ही रहे है, बल्कि उनके, एक-दूसरे के निकट आने का भी रास्ता सरल कर रहे है। उधर विनोबाजी ने बे-जमीन लोगो के लिए जमीन मागकर, बल्कि अब तो गाव-के-गाव भूदान मे लेकर, एक महान चमत्कार कर दिखाया है।

आज बापू की पुण्य-स्मरण-तिथि है, श्राद्ध-दिन है। उनके जीवन का चितन करते हुए आज हठात ये विचार मन मे आ रहे है और उनके कुछ ऐसे जीवन-प्रसग ध्यान मे आये, जिनका चितन, आज जब हम नवराष्ट्र का निर्माण करने जा रहे है, हमारे लिए फलप्रद सिद्ध हो सकता है।

की भी जितनी इज्जत करते थे, उसकी जितनी कद्र करते थे, उसके सैकडो उदाहरण है।

मेरे एक प्रतिष्ठित मित्र वापू की अहिसा-नीति के वडे आलोचक थे और उनको मुसलमानो का पक्षपाती मानकर उनकी घोर आलोचना करते थे। कई वार मुझसे कहा कि मेरी गाधीजी से मुलाकात करा दो तो मै उनको वताऊ कि वह कैसे गुमराह हो रहे है। मित्र वडे मुहफट थे, इसलिए मै मन मे मुलाकात कराने से डरा करता था। लेकिन एक दिन वह डर सामने आ ही गया। वापू अहमदावाद जाते हुए अजमेर स्टेशन से गुजरे। मित्र स्टेशन पर आये और मुझसे कहा, "गाधीजी से मेरा परिचय कराओ।" मित्र वापू के डिब्वे मे गये और उन्हे भला-वुरा कहने लगे। मेरा मुह फक होने लगा। वापू प्रसन्न मन से सव सुन रहे थे। चेहरे पर वही सवको जीत लेने-वाली मुस्कराहट! गाडी चल दी। मै आगे तक साथ गया। मैने वहुत सिटपिटाते हुए पूछा, "वापू, आपको वहुत-कुछ खरा-खोटा सुनना पडा।" मैने अपनी छोटी वुद्धि के अनुसार मन मे सोचा कि वापू मन मे कह रहे होगे कि कैसे लट्ठमार से इसने मेरा परिचय करा दिया। वापू ने कहा, "नही, मुझे तो उनकी वात वडी अच्छी लग रही थी। गाडी चल दी, नही तो मै उनकी वात और सुनता।" मैने कहा, "वापू, वह आदमी दिल से वडा साफ है।" वापू ने कहा, "ऐसे लट्ठमार आदमी अक्सर दिल से मैले नही होते।"

आज हम वडे तो ठीक, छोटे-छोटे आदमियो के प्रभाव मे आकर उचित-अनुचित का विचार कई वार भूल जाते है। लेकिन वापू वडे-से-वडे तेजस्वी मित्रो के तेज से और प्रभाव

से भी अपना निश्चित मार्ग नही छोडते थे। अहमदावाद कांग्रेस के समय की वात है। देशवन्धुदास और प० मोतीलालजी नेहरू जेल मे थे। वह अधिवेशन बडा महत्त्वपूर्ण था। तत्कालीन प्रिस ऑव वेल्स के वहिष्कार का आदोलन चल रहा था। वापू के मार्ग-दर्शन पर सव आख लगाये हुए थे। देशबधुदास और मोतीलालजी ने चितित होकर जेल से गाधीजी के नाम आदोलन और कार्यक्रम के वारे मे सदेश भेजा। उनको शायद ख़याल हुआ कि गाधीजी अभी भारत की राजनीति मे नये खिलाडी है, कही चाल न चूक जाय। लेकिन वर्किंग कमेटी की आपस मे वातचीत मे ज्योही यह सवाल आया, वापू ने वडी दृढता से कहा कि जो जेल मे चले जाते है उनकी 'सिविल डैथ' हो जाती है। उन्हे जेल से वाहर कुछ कहने-सुनने का कोई अधिकार नही रह जाता। हम वाहरवाले वाहर की परिस्थिति का विचार करेगे। उन्हे जेल मे चिता करने की आवश्यकता नही है और न हमे उनके विचार और सुझावो की चिता करने की आवश्यकता। वडे-वडे नेता जो उस समय वहा थे, उनकी इस दृढता को देखकर उनके मुह की तरफ देखते रह गए। ऐसे निर्भय वाक्य सुनने का शायद उन्हे यह पहला ही मौका था।

चौरीचौरा-काड के वाद वापूजी ने एक साल मे स्वराज्य देने का नोटिस स्थगित कर दिया और उसके निमित्त होनेवाले सत्याग्रह की कार्रवाई स्थगित कर दी। इसपर कांग्रेस क्षेत्रों मे वड़ी हलचल मच गई। इस स्थिति पर विचार करने के लिए ए० आई० सी० सी० की मीटिग दिल्ली मे वुलाई गई, जिसमे गाधीजी की इस स्थगित कार्रवाई का वडा विरोध हुआ। कई ववताओ ने वापू को आडे हाथो लिया। इससे

पहले शायद ही गाधीजी को इतनी सख्त वात अपने साथियो और अनुयायियो से सुननी पडी। मै उन दिनो सावरमती मे रहता था और 'हिन्दी नवजीवन' का काम करता था। जब वापू दिल्ली से लौटे तो मैने दु ख के साथ उनसे कहा कि वापू, अवकी वार तो आपका दिल्ली मे वडा विरोध हुआ। मुझे यह सवकुछ अच्छा नही लगा। वापू ने आश्चर्य से पूछा, "क्यो, इसमे बुरा लगने की क्या वात है ? जो कुछ विरोध हुआ वह तो मुझे वहुत अच्छा लगा। उससे मुझे पता लग गया कि अव काग्रेस के लोग कितने निडर हो गए। जव मुझ-जैसे का कसकर विरोध करते है तो अव ये दुनिया मे किसी से नही दवेगे। यह निडरता तो मुझे वडी प्रिय हुई। लेकिन एक दूसरी वात से मुझे अफसोस हुआ और वह यह कि इतना विरोध करके भी आखिर वोट मेरे ही पक्ष मे दिये और मुझे जिता दिया। इससे मेरी समझ मे नही आया कि मेरा वास्तविक विरोधी कौन है और मेरे पक्ष मे कौन है। मुह से वात विरोध की कही और हाथ मेरे पक्ष मे उठाये।"

मनुष्य अपने साथ ढीला और दूसरो के साथ कठोर व्यवहार करता है। इसका नतीजा यह होता है कि दूसरे लोग तग आ जाते है और हमारे प्रति उनकी श्रद्धा नही वढ पाती। परन्तु वापू का व्यवहार इससे उल्टा था। वह अपनो के प्रति वहुत कठोर और जागरूक रहते थे और दूसरो के प्रति सहृदय और सुकोमल भाव रखते थे। अपने राई के वरावर दोष को भी वह क्षमा नही करते थे, जवकि दूसरो के पहाड के वरावर दोष को भी वह अपने पेट मे समा लेते थे। मुझे ऐसा एक प्रसग याद आ रहा है। गाधी-सेवा-सघ के एक सम्मेलन मे एक ऐसे

दम्पति आये थे, जिन्होने ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था। पति एक जगह काम करते थे और पत्नी दूसरी जगह पढती थी। उस सम्मेलन मे दोनो आये थे। दुर्भाग्य से उस समय उनका व्रत भग हो गया। दैवयोग से उसी दिन वापू ने अपने प्रार्थना-प्रवचन मे सयम और ब्रह्मचर्य का विवेचन किया। उसे सुनकर उस भाई से न रहा गया और उसी सभा मे खडे होकर और हाथ जोडकर वापू से कहा, "मै पापी हू, मुझसे आज एक पाप हो गया है।" वापू दम्पति के व्रत को जानते थे और उसी समय अपनी करुणा और महानता के साथ हाथ का इशारा करके कहा, "बैठ जाओ। हम सव पापी है।" वापू की इस क्षमा-शीलता से सवके नयन सजल हो गए। यह घटना ईसामसीह के उस प्रसग की याद दिलाती है, जव उन्होने किसी दुराचारिणी स्त्री के सिलसिले मे कहा था कि उसे पहले वह आदमी पत्थर मारे, जिसने स्वय कभी कोई पाप न किया हो।

वापू जितने ही आदर्शवादी थे, उतने ही वह व्यवहारी और व्यवहार-कुशल भी थे। मनुष्य की परीक्षा करना भी खूव जानते थे। एक वार ववई मे काग्रेस के जलसे के समय उन्हे यह खवर लगी कि कुछ राजनैतिक विरोधियो ने मुझे मारने-पीटने का, और अजमेर प्रदेश काग्रेस कमेटी के काग्रेस-पडाल स्थित दफ्तर पर ज़वरदस्ती कव्जा करने का आयोजन किया है। उस समय मै प्रातीय काग्रेस कमेटी का अध्यक्ष या प्रधान मत्री था। रात के १०-१०॥ वजे थे। वापू सोने जा रहे थे। उन्होने एक मित्र द्वारा मुझे सदेश भिजवाया, "हरि-भाऊ से कहो कि वह रात को कैंप छोडकर ववई (शहर) मे जाकर सो रहे।" मुझे वड़ा आश्चर्य हुआ कि वापू ने यह कैसी

कायरतापूर्ण सलाह दी है। वापू तो हमेशा ऐसे कठिन और विकट अवसर मे मुकावला करने की प्रेरणा देते है। मैने मित्र से कहा कि मुझे वापू की सलाह पसद नही आई। उन्होने कहा, "चलो, बापू से वात कर लो।" मै गया। मैने जरा विगडकर कहा, "वापू, आपने मुझे यह कायरता की सलाह कैसे दी?" वह वोले, "भाई जो रिपोर्ट मैने सुनी है, उससे मुझे ऐसा लगा कि इस आयोजन की खवर से तुम भयभीत हो गए हो। भयभीत का धर्म है प्राण वचाना। सो मैने तुम्हे प्राण वचाने की सलाह दी है। भयभीत का धर्म तुम्हे वताया है।" मैने कहा, "वापू, मुझे जरा भी डर नही लगा है।" वापू को कदाचित इसपर विश्वास न हुआ और उन्होने मुझे कसना चाहा और दृढता के स्वर मे वोले, "अच्छा, अगर तुम्हे कोई डर नही है तो जाओ, आज उन लोगो के कैप मे उनके पास जाकर सोओ, जो इस किस्म का हमला करने की वात सोच रहे है।" वापू की यह सलाह मुझे वहुत पसद आई। मेरे मन का सारा बोझ हल्का हो गया और मैने कहा, "वापू, यह आपने ठीक सलाह दी है।" मै उसी समय रात को उस कैप मे गया और उन सोते हुए मित्रो को जगाकर कहा कि ऐसी खवर सुनकर मै यहा आया हू और आप जो कुछ करना चाहे, वह शौक से कर सकते है। जव वापू को यह खवर लगी तो वहुत सतुष्ट हुए।

वापू की मोहन-शक्ति का एक प्रसग याद आ रहा है। एक लडकी के पिता उसकी इच्छा के खिलाफ शादी करना चाहते थे। लडकी वापू के आश्रम मे आती-जाती रहती थी। कोई उपाय न देखकर उसने वापू से पूछा, "क्या करू?" वापू ने कहलाया, "मेरे पास चली आओ।" लडकी चुपके से भागकर

वर्धा चली आई। माता पिता—खासकर पिता वडे क्रुद्ध हुए। वापू से मिलने आये। वापू ने आगत-स्वागत का ख़ास तौर पर स्वत ध्यान देकर प्रबध कराया। मुलाकात के समय वापू ने उस लडकी को भी बुला भेजा। कमरे मे आते ही दम्पति ने वापू को झुककर प्रणाम किया। वापू ने अपनी मोहिनी मुस्कान से कुशल समाचार पूछे। फिर कहा, "यह मेरे पास भागकर आ गई है। इसे ले जाना चाहते हो? अच्छा, ले जाओ, तुम्हारी लडकी है।" वापू के इन वचनो का कुछ ऐसा अजीव प्रभाव पिता पर पडा कि वह हठात बोल पडा—"वापू, लडकी आपकी है, भले आपके ही पास रहे।" वापू ने फौरन वत्सल-भाव से कहा, "तो अच्छा, इसकी मर्जी है। यही रहे।" दम्पति आये थे लडकी को लिवा लेने, और वही छोडकर जाने को तैयार हो गए। जो क्रोध होकर आया था वह समर्पण वनकर रह गया। वापू का मोहन नाम यहा सार्थक हुआ।

वापू का जीवन सूर्य के समान रहा है और उनके जीवन की घटनाए सूर्य की अनत किरणो के समान है। हमारे देश और विश्व की वर्तमान परिस्थिति मे मुझे स्वभावत. अपने से सबधित उन्ही घटनाओ का स्मरण हुआ, जो इस वातावरण मे याद आ सकती है। यही स्मरण-शक्ति आज के पुण्य-प्रसग पर अपने श्रोताओ को समर्पित है।

: २२ :

गांधीवाद या गांधी-दर्शन

आज का विषय गाधीवाद है। सच पूछा जाय तो गाधी-वाद जैसी कोई चीज नही है। ससार मे वाद कई है कम्यूनिज्म, सोशलिज्म, फासिज्म आदि। इसी तरह गाधीवाद चल पडा है। इसके लिए अभी कोई दूसरा अच्छा शब्द नही मिला है। बापूजी ने कभी प्रयत्न नही किया कि गाधीवाद जैसी चीज उनके नाम से चले। उन्होंने कुछ सिद्धान्त अवश्य बना रखे थे। उनका आशय कोई वाद या पथ चलाना नही था। उन्होने एक शब्द प्रचलित किया था। उसके पहले शायद भारतवर्ष के इतिहास मे वह शब्द नही मिलेगा। वह है सत्याग्रह। यदि किसी शब्द मे उनके सिद्धान्तो को पकडना चाहे तो वह है सत्याग्रह। आग्रह कहते है किसी बात पर जोर देना, जिसका भाव यह है—करेगे या मरेगे। जीवेगे या मरेगे। मूल शब्द सत्य है। गाधीजी ने इस शब्द के अर्थ पर नया प्रकाश डाला है। सत्य शब्द आमतौर पर दो अर्थो मे व्यवहृत होता है—एक तत्त्व अर्थ मे और दूसरा गुण अर्थ मे। तत्त्व की व्याख्या मे तो सत्य का अर्थ है अविकार, त्रिकालावबाधित, अपरिवर्तनशील। गुण की व्याख्या मे सत्य का अर्थ है सच बोलना, सचाई से रहना। मनुष्य का धर्म है सत्य पर चलना। तो गाधीजी का सिद्धान्त यही था कि जो चीज सत्य है, उसे पकडना और उसका आग्रह करना। जिससे समाज का, सृष्टि का कल्याण होता हो या जो

चीज, सत्य-समाज, सृष्टि की मूलभूत आधार हो, उसे पकडना चाहिए और उसका पालन करना चाहिए। जरूरत पडे तो उसका आग्रह भी, जी-जान से करना चाहिए। तभी व्यक्ति-जीवन या समाज-जीवन सफल होगा। सत्य के पकडनेवाले पहले भी ध्रुव, प्रह्लाद आदि हुए है। प्राचीन ऋषि-मुनियो ने भी आत्मा और शरीर मे आत्मा को सत्य समझकर उसके चिन्तन, मनन और प्राप्ति पर जोर दिया। वेदान्तियो ने भी एक ही तत्त्व माना है, चेतन आत्मा। तो बापूजी भी कहा करते थे कि जो एक सत्य सनातन वस्तु है, उसे पकड रखना चाहिए, अन्य सब उसी पर आधारित होगे। जैसे माला मे फूल अनेक होते है. लेकिन धागा एक। अनार एक ही होता है लेकिन उसमे दाने अनेक। सब दाने उसके एक कवच मे छिपे होते है। अत. इन उदाहरणो से मालूम होता है कि संसार मे एक ही तत्त्व व्याप्त है। व्यवहार की दृष्टि से भी जीवन तभी सुखी हो सकता है, जब हम सचाई से रहेगे। तो अब सवाल यह रह जाता है कि इस सत्य को प्राप्त कैसे किया जाय? गाधीजी का मत है कि सत्य को पाने के लिए सत्य ही साध्य हो सकता है। गुण रूप सत्य हमारा साधन और तत्त्व रूप सत्य हमारा साध्य होना चाहिए। सचाई से रहने का अर्थ है न दूसरे को धोखा देना, न अपने-आपको धोखा देना। इस तरह से जीवन विताना चाहिए। उसमें चाहे परम सत्य की प्राप्ति हो या न हो, व्याव-हारिक सत्य की तो सिद्धि कर ही लेनी चाहिए। यो अपवाद रूप मे व्यावहारिक सत्य को लोग कभी-कभी छोड़ भी देते है, लेकिन सोचने की चीज यह है कि जीवन किसपर टिका हुआ है? जीवन सचाई पर ही टिका हुआ है। यदि सब आदमी झूठ

बोलने लगे या धोखा देने लगे तो समाज टिक सकेगा या सुखी बन सकेगा ? शासन भी विगड जायगा।

इसके साथ सत्याग्रह मे एक चीज और छिपी हुई है। वह है अहिसा। सत्य और अहिसा का जोडा है। जहा आपको प्राचीन ग्रथो मे "सत्यान्नास्ति परो धर्म" मिलेगा, वहा "अहिसा परमो धर्म" भी मिलेगा। अत इन दोनो का जोडा है। जैसे सत्य का अर्थ है दूसरे को धोखा न देना, उसी तरह अहिसा का अर्थ है, दूसरे को न सताना। यदि आप दूसरे को दु ख देना पसन्द नही करेगे तो आपको भी कोई नही सतायेगा। 'जियो और जीने दो' का सिद्धान्त ही श्रेयस्कर है। वापूजी यही कहा करते थे कि अहिसा के बिना समाज चल नही सकता। या यो कहे तो कोई आपत्ति नही होगी कि सृष्टि का मूल आधार जहा सत्य है, वहा समाज का मूल आधार अहिसा है। सृष्टि मे भी हिसा चल सकती है ? और है, लेकिन समाज हिसा से बिल्कुल नही चल सकता। डरने-डराने की और दवने-दवाने की भावना जब समाज मे से उठ जायगी, तभी वह सुखी रह सकता है। आप इसे करके देखिये। यदि आपको, आपके परिवार को, समाज को और ससार को इससे सुख और शान्ति मिले तो हमारी वात, गाधीजी की वात मानना। और यदि यह झूठ निकले तो हमे गालिया देना। कोई माने तो एक साल हिसा और अहिसा का प्रयोग करके देख ले।

अहिसा की अनेक व्याख्याए है। मैने तो सरल-सी आपके सामने रखी है। अहिसा एक निषेधात्मक शब्द है, विधेयात्मक नही। यह न करो, वह न करो, यही अर्थ इससे निकलता है। 'क्या करें' यह इस शब्द से व्यक्त नही होता। आजतक के अर्थ

मुझे अपूर्ण लगते है। प्रेम, सहयोग, सेवा, शुभ और मगल की भावनाओ से ही अहिसा का अर्थ पूर्ण होगा। मुझे जो अहिसा के लिए सार्थक शब्द सूझा, वह है मगल। जगत के प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक पदार्थ के प्रति मगल की भावना होनी चाहिए। मगलमय शब्द हमारे जीवन मे फैला हुआ है। हमारे प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ मे मगलाचरण होता है। तो यह तो अहिसा की व्याख्या या अर्थ के बारे मे हुआ। उसका प्रभाव भी आश्चर्यजनक है। सत्य से मनुष्य स्वय निडर हो जाता है और अहिसा से वह दूसरो को निडर बनाता है। सत्य और अहिसा दो ऐसे शस्त्र है, जिनसे मनुष्य मे दुनिया से लडने की, और टिके रहने की ताकत आ जाती है।

हमारे चलाये हुए पचशील-सिद्धान्त सत्य और अहिसा पर आधारित है। आज बापूजी की दी हुई शिक्षा का अन्त नही हुआ है। इसी प्रकार सामाजिक क्षेत्र मे बापू की देन है 'सर्वोदय'। मनुष्य के विकास, सुख, शान्ति और समता की दृष्टि से आज शासन की सब प्रणालियो मे जनमत प्रणाली अच्छी है। लेकिन उसमे भी सबकी एक राय नही मिलती। जब सबकी एक राय नही मिलती तो जन-कल्याण के लिए बहुमत की राय ली जाती है। लेकिन बहुमत की राय या जनतत्र-प्रणाली से सबका समाधान नही होता। अल्पमतवाले अपने अधिकारो से वचित रह जाते है। बापूजी ने इस कमी को पकडा। तब उन्होने सबके कल्याण और सबके सन्तोष के लिए सर्वोदय की प्रणाली निकाली। सबका उदय, विकास और मगल हो, यही भावना इसमे है। अब देखना यह है कि पहले सेवा किसकी करनी चाहिए। गरीब की या अमीर की, छोटे की या बडे की। पहले

नम्बर सेवा का अधिकारी वह है, जो ज्यादा दुखी है या ज्यादा साधनहीन है।

आजकल गाधीवाद के सामने और सब वाद ढीले पड गए है। साम्यवाद को ही ले लीजिए। उसका कहना है कि वर्ग-हीन समाज की स्थापना हो और मनुष्य अपनी शक्ति तथा योग्यता के अनुसार काम करे और अपनी आवश्यकता भर साधन-सामग्री समाज से प्राप्त कर ले। लेकिन ये वाते तो हमारी प्राचीन सयुक्त-परिवार प्रणाली मे होती थी। एक परिवार के सब भाइयो की कमाई एक जगह एक वाप के पास इकट्ठी होती थी और सबकी आवश्यकता एक जगह से पूरी होती थी। सबके व्याह-शादी, शिक्षा-दीक्षा, रहन-सहन समान होते थे। तो साम्यवाद पश्चिम के लिए नई चीज हो सकती है, हमारे यहा तो प्राचीनकाल से यह चला आ रहा है। आगे चलकर हमने इस प्रणाली को छोड दिया। इसका विकास रुक गया। इस-लिए दु ख उठाने लगे। इसीलिए वापूजी या विनोबाजी कहते है कि सबको अपना मानो, सबके मगल की वात सोचो। भूदान-आदोलन यही तो वता रहा है कि सब चीज सबकी। व्यक्ति का अधिकार किसी पर नही होना चाहिए। साराश यह हुआ कि सर्वोदय, भूदान-आन्दोलन ये सब गाधीवाद की देन है और सर्वोदय और सत्याग्रह की सिद्धि के लिए उन्होने वताया है कि कुछ प्रतिज्ञाए लेना और एक निश्चित कार्यक्रम वनाना अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए उन्होने एकादश-व्रत वताये है तथा रचनात्मक कार्यक्रम हमारे सामने रखा है। इनपर यदि हमने अमल किया तो एक दिन हम वर्गहीन-समाज और शासन तथा शोपण-रहित-व्यवस्था के कायम करने मे सफल होगे। इन्हे

आप सर्वोदय सिद्धान्त कहे, या गाधीवाद कहे। ये ऐसे गुण है, जिनकी शिक्षा का प्रचार स्कूल और कालिज के प्रत्येक विद्यार्थी तक होना चाहिए। यही तो सच्ची शिक्षा है।

: २३ :

कसौटी पर

गाधी-पथियो मे मै दो प्रकार के लोगो को शामिल करता हू । एक वे जो गाधी-स्पिरिट (मूलभाव) के कायल है, उनके कार्यक्रम पर उतना ध्यान नही देते, और दूसरे वे जो गाधी-मत और कार्यक्रम दोनो को मानते है। पहले प्रकार के लोगो की तो यह आलोचना होती है कि वे गाधी के नाम की दुहाई देते रहते है, परन्तु उनके काम की परवाह नही करते। अत या तो वे झूठे है या कमजोर है, जो गाधीजी के नाम का सहारा लेकर अपनी गाडी चलाते रहते है। दूसरे प्रकार के लोगो पर यह आक्षेप होता है कि ये मूढ की तरह गाधीजी की लकीर पीटते है । इनमे न तेजस्विता है, न गतिशीलता, न गाधीजी की समय-सूचकता, न व्यापक तथा उदार दृष्टि-बिन्दु । आपस मे भी ये एक साथ कन्धा मिलाकर नही चल सकते––कोई किधर जाता है तो कोई किधर। यह वात नही कि इन आलोचनाओ का कोई उत्तर नही है, या नही दिया जा सकता है, परन्तु इसमे भी कोई शक नही कि इनमे सार भी है। हम इनके उत्तर की झझट मे न पडकर इसमे से सार ग्रहण करेगे, और इनसे लाभ उठावेगे तो इनका उत्तर विना दिये ही अपने-आप मिल जायगा। यह उत्तर हमे जवान से नही, अपने कार्य व व्यवहार से देना होगा। वही सच्चा विश्वासदायक उत्तर होगा।

गाधीजी के उत्तराधिकारी दो विभागो मे वट गए––

एक ने प्रत्यक्ष राजनीति व शासन का भार लिया, दूसरे ने नैतिकता व रचनात्मक कार्यक्रम को सभाला। वापू के समय मे भी ऐसे दो विभाग वने हुए थे—वापू दोनो का सचालन, मार्ग-दर्शन, नियमन करते थे, परन्तु शासन की व शान्ति-रक्षा की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी आ जाने के कारण, खासकर वापू के अभाव मे, आज वे जितने स्पष्ट व पृथक्-से हो गए है, उतने पहले नही थे। भले ही अधिक स्पष्ट हो गए हो, परन्तु वापू के वाद परिणाम यह होना चाहिए था कि शासनात्मक व रचनात्मक दोनो विभाग एक-दूसरे के पूरक होकर परस्पर सहयोग से एक-दूसरे के पोपक वनते, शक्ति वढाते, परन्तु वे आज एक-दूसरे के आलोचक से वनते जा रहे है। एक-जीवता के वजाय जैसे विजातीयता आ रही हो, इसमे कही-न-कही भूल हो रही है।

दूसरे, 'शासन' मे, सत्ता मे, फिर भी हमारे नेता किसी तरह एक साथ चल रहे है, परन्तु 'सेवा' मे हम लोग संगठित रूप से चल नही पा रहे है। सत्ता का क्षेत्र झगडो व रागद्वेप का अखाडा है, जवकि सेवा का क्षेत्र स्वभावत. एकता का पोपक है। तो क्या सत्ता-क्षेत्र मे हमने जो सफलता पाई है, वह सेवा-क्षेत्र मे भी पाई है? यह शोचनीय है। अत अव हमें दुहरी खाई को पाटना है। वैसे, जो नैतिक क्षेत्र मे उत्तराधिकारी है, उनपर नैतिक गुणो व शक्तियो के उत्तम प्रदर्शन का अधिक भार है, परन्तु सत्ता-क्षेत्र के नेता आज जिस एकता के गुणो का परिचय दे रहे है, क्या वैसा ही सेवा-क्षेत्र के नेता भी दे रहे है? इस क्षति की पूर्ति हमे शीघ्र ही कर लेनी है। इसका उपाय तो हमने किया है—सर्व-सेवा-सघ वना करके। यदि वह सजीव तथा कार्य रूप वन जाय तो रचनात्मक क्षेत्रो का सघटन दृढ हो सकता है,

इसमे सन्देह नही। इसके वाद ही सत्ता व सेवा दोनो के नेताओ मे एक-जीवता लाना अधिक सुगम होगा।

वापू सेवा के रचनात्मक-कार्यक्रमो के साथ प्रासगिक व तात्कालिक विशिष्ट सेवाकार्या मे भी जुट पडते थे---जैसे मानवी उपद्रव, प्राकृतिक सकट, रोग-प्रकोप आदि कालीन सेवाए। इसके लिए शान्ति-सेना के सगठन का आयोजन वहुत समयोपयोगी व उपयुक्त है। सर्वोदय के अन्त मे तो सेना-सगठन, 'शासन' सव निरर्थक हो जानेवाले है, परन्तु सर्वोदय को लाने के लिए प्रारभ मे सेवात्मक---रक्षात्मक सगठनो की आवश्यकता रहेगी---लोगो मे अनुशासन, सहनशीलता, नियम-पालन, आदि सामूहिक जीवन के योग्य गुणो का विकास करने के लिए।

यह सव तो हमारे किये हो सकेगा, परन्तु वापू के अभाव मे उनके सामजस्य-वल, समन्वय--शक्ति की पूर्त्ति कौन करे ? सेवात्मक व सत्तात्मक दोनो विभागो के समस्त तत्त्वो को मिलाकर एक साथ कौन ले चले ? यदि देश को एकता के मार्ग पर चलना है, तो यह गुण व शक्ति उसमे आनी ही पडेगी। एक महान व्यक्ति ऐसा न निकलेगा तो नेताओ के सगठित, सम्मिलित नेतृत्व (हाई कमाड) द्वारा यह उद्देश्य सिद्ध होगा।

२४

तो हम क्या करें ?

जो आजादी हमे आज मिली है, वह यद्यपि अधिकाश मे अहिसा-वल से, जिसे अव महात्माजी मन्दवल कहने लगे थे, मिली है, तो भी उसके मिलने से जाहिरा तौर पर अहिसा को एक गहरा धक्का लगा है। काग्रेस के नेताओ को प्रान्तो मे व केन्द्र मे शासन-सत्ता सभालनी पडी, जिसमे आज फौज व पुलिस का सहारा लेना जरूरी है। इधर पाकिस्तान व हिन्दुस्तान के बटवारे को लेकर लोगो मे भी आपस मे भीषण व अमानुप हिसा फूट निकली। दोनो का परिणाम महात्माजी के हृदय पर यह हुआ कि वह मानने लगे—'रामराज्य' की स्थापना के ये लक्षण नही है। किसी मित्र ने मुझसे कहा था कि एक वार इसी सिलसिले मे उन्होने किसी से कहा था—ऐसा जान पडता है, जो मसाला मुझे मिला, वह स्वराज्य-प्राप्ति के लिए तो ठीक व काफ़ी था, परन्तु 'रामराज्य' की स्थापना इस मसाले से शायद न हो। इसके लिए मुझे एक ओर जन्म तक इन्तजार करना पडेगा।

अव वह चले गए। वह अपने जीवन मे सत्य या ईश्वर को प्रत्यक्ष देखना चाहते थे। मोक्ष उन्हे ज्यादा लुभावना नही मालूम होता था। उनकी साध थी :

कामये दु खतप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम्।

यह अभिलापा 'रामराज्य' की स्थापना से ही पूर्ण हो सकती थी। इस साध को लेकर वह मरे। अत. मेरा तो विश्वास है कि उसकी

पूर्त्ति के लिए वह फिर कही जन्म लेगे। उनका राम-राज्य केवल हिन्दुस्तान के लिए नही था। हिन्दुस्तान तो उनके प्रयोगो का एक स्वाभाविक क्षेत्र उनके लिए वन गया था। अत. यह भी हो सकता है कि उनका जन्म भी किसी दूसरे देश मे हो। एक वार उन्होने कहा भी था कि कभी-कभी मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि सभव है दुनिया का कोई दूसरा देश मेरे अहिसा-सन्देश को हिन्दुस्तान से भी ज्यादा व जल्दी अपना ले। उनकी आत्मा अपनी अतृप्त इच्छा के सस्कारो को लेकर जो भी करे, उससे हमारी ज़िम्मेदारी कम नही हो जाती। उसकी तरफ देखते हुए हम अपने कर्तव्यो मे शिथिल नही हो सकते।

तो हम क्या करे? 'राम-राज्य' की स्थापना के लिए जो उनका अवशिष्ट कार्य है, उसके लिए हमे क्या करना चाहिए? हमारी वर्तमान सरकार के नेताओ ने प्रतिज्ञा की है व एलान किया है कि हम महात्माजी के वताये रास्ते पर चलेगे। उनका रास्ता तो सत्य व अहिसा का था, जो कि राम-राज्य के भी पाये है। अत हमारा पहला काम तो हुआ अपने व समाज के जीवन मे सत्य व अहिसा का प्रकाश व प्रवेशन। ऊपर सरकार की ओर से व नीचे जन-सस्थाओ की ओर से।

सत्य व अहिसा कोरे आध्यात्मिक तत्त्व नही है। व्यवहार मे भी जिस अश तक हम उनका पालन करते है, हम समाज-जीवन को सुगम, शान्तिमय व उन्नतिशील वनाते है। सत्य का अर्थ है हमारे पारस्परिक व्यवहार मे एक दूसरे के प्रति सचाई हो; दग़ा, विश्वासघात, कुटिलता न हो। अहिसा का अर्थ है, हम एक-दूसरे के साथ सद्भावना, सहयोग, समभाव या आदर से रहे। यदि व्यक्ति का व समाज का जीवन ऐसा वन

जाय, तो फिर सेना व पुलिस अर्थात शस्त्र-शक्ति की कम-से-कम आवश्यकता रहेगी। यह हमारे शिक्षा-क्रम व शिक्षा-विधि मे परिवर्तन करने से सिद्ध हो सकता है।

प्राणदान की आवश्यकता

गाधीजी ने सत्याग्रह के शस्त्र से काम लेकर न केवल भारत को स्वतन्त्र कराया, वल्कि भावी समाज-निर्माण के लिए 'सर्वोदय' का आदर्श भी हमारे सामने रखा। अव हमारा काम एक तो यह है कि प्राप्त स्वतन्त्रता की हम अच्छी तरह रक्षा करे और दूसरा यह कि सर्वोदय के आदर्श को सामने रखकर समाज का नवनिर्माण करे। सर्वोदय के आदर्श मे मुख्य वात यह है कि समाज मे किसी प्रकार की हिसा-प्रणालिया प्रचलित न रहे, उसका आधार शान्तिमय प्रणालियो पर रहे। अन्ततोगत्वा समाज मे से हिसा विल्कुल निकल जाय। आज समाज मे व्यापक हिसात्मक प्रवृत्तियो को रोकने के दो ही उपाय है—एक तो यह है कि शिक्षा, प्रचार, उपदेश, निजी आचरण के द्वारा लोगो मे शान्ति के सस्कार डाले जाय और पच-फैसला आदि जैसी शान्तिमय प्रणालिया प्रचलित करके समाज-जीवन मे शान्ति की प्रतिष्ठा की जाय। दूसरा यह कि देश और समाज की उपद्रवी और हिसात्मक शक्तियो और तत्त्वो का शान्तिपूर्ण साधनो से प्रत्यक्ष मुकावला किया जाय।

वापू ने वुनियादी तालीम, खादी, अस्पृश्यता-निवारण, राष्ट्रीय एकता इत्यादि रचनात्मक कार्यक्रमो के द्वारा सर्वोदय के वुनियादी कामो की नीव डाली, जिसमे भू-दान आदि कार्यक्रम जोडकर पूज्य विनोवाजी ने एक सजीव रचनात्मक वातावरण

उत्पन्न किया है। काग्रेस तथा दूसरी सस्थाओ और दलो ने भी उसमे सहयोग देकर उसको आगे वढाया है। हमारे प्यारे नेता जवाहरलालजी ने पचशील के द्वारा विदेशो मे और सारे ससार मे शान्तिमय वातावरण पैदा किया। ये सव बुनियादी काम अपने ढग से ठीक और तेज़ी के साथ हो रहे है, परन्तु उसके दूसरे अग का, जो अशान्ति फैलाने और उपद्रव करने-करानेवाले तत्त्वो और समूहो का शान्ति के साथ मुकावला करने से सम्वन्ध रखता है, कोई आयोजन अभी नही वन पाया है। उसकी नितान्त आवश्यकता है। आए दिन के उपद्रवो और उनसे होनेवाली हानि और अपमान और उसके जवाव मे पुलिस के गोलीकाड को रोकने के लिए सरकारी और गैरसरकारी दोनो स्तरो पर कुछ कार्रवाई करने की जरूरत है। सरकारी स्तर पर तो फिलहाल मौजूदा पुलिस के साथ एक निवारक पुलिस-दल वनाने की अत्यन्त आवश्यकता है, और गैरसरकारी स्तर पर जगह-जगह शान्ति-दलो की स्थापना तुरन्त होनी चाहिए, जो निवारक काम भी करे और उपद्रवो के घटनास्थल पर पहुच कर प्रत्यक्ष उपद्रवी तत्त्वो का शान्तिमय तरीके से मुकावला करे और उसमे अगर जान भी देनी पडे, तो देने की तैयारी करे। अनशन के द्वारा उपद्रवो की लहर को रोकने की आवश्यकता हो तो उसका भी प्रयोग करे। मै समझता हू कि अव वह समय आ गया है कि हम केवल भूमि-दान और ग्राम-दान से ही सतुष्ट न हो जाय, वल्कि देश की भीतरी शान्ति की रक्षा के लिए आवश्यकतानुसार अपने प्राण-दान भी दे। पूज्य वापू के जन्मदिन पर आज हम इस वात का विचार और सकल्प क्यो न करे?

हिंसा और अहिंसा की समस्या

कितनी ही वाते ऐसी है, जिनका सम्बन्ध हृदय के विकास से, अथवा मन की वृत्तियो के सुसस्कारो से जितना है, उतना बुद्धि-वैभव से नही, जैसे—सत्य, अहिसा अथवा प्रेम, ये वाते ऐसी है, जिन्हे दलील या बुद्धि के चमत्कार के द्वारा कोई किसी को अच्छी तरह नही समझा सकता। जिन्होने इनको अपने जीवन का धर्म वना लिया है, जो इनके अनुसार जीने का प्रयत्न करते है, उनको विना दलील के ही इनके लाभो का आनद और सुख मिलता रहता है और ऊपर-ऊपर देखने से जो हानि या महासकट मालूम होता है, उससे वे विचलित नही होते। यदि शक्कर की मिठास कोई किसी को समझाने लगे तो यह जिस प्रकार कठिन है, उसी प्रकार उससे वढकर कठिन है—सत्य, प्रेम या अहिसा के मर्म और स्वाद को समझा देना। फिर जैसे-जैसे मनुष्य की गति इनमे होती जाती है और वह जैसे-जैसे इनके अनुभव मे आगे वढता जाता है, तैसे-तैसे इनके रूप के सम्वन्ध मे उनकी धारणाए अधिक व्यापक, सूक्ष्म और गहरी होती चली जाती है और उन तमाम अवस्थाओ को पाठको के सामने खोलकर रख देना मनुष्य की वाणी और लेखनी की मर्यादा और शक्ति के वाहर हो जाता है। फिर भी बुद्धि-प्रधान मनुष्य तो उन्हे बुद्धि ही के द्वारा समझने की चेष्टा करता है और समझाने वाला भी उन्हे अपनी बुद्धि के ही अनुसार समझा

सकता है। वह यदि इसमे पूर्ण सफल नही होता है तो यह सत्य, अहिसा या प्रेम का दोष नही है, इनके गुण, महत्ता या सौन्दर्य की कमी नही है, वल्कि मनुष्य के अपने सामर्थ्य की मर्यादा का सूचक है। अस्तु।

सत्याग्रह आश्रम सावरमती मे एक रोग-पीडित महा-व्याकुल गाय के वछडे को जहर की पिचकारी लगाकर मार डालने के प्रश्न पर हिसा-अहिसा का भारी विवाद छिड गया है। इस सम्वन्ध मे महात्माजी ने अपने जो विचार प्रदर्शित किये है, उन्हे सुनकर कितने ही अहिसावादी भी वडे चक्कर मे पड़ गए है, अहिसा सम्वन्धी उनकी पुरानी धारणाओ को गहरा धक्का पहुचा है और महात्माजी के फलितार्थ उनकी समझ मे ठीक-ठीक नही आ रहे है। यह विलकुल स्वाभाविक है। महात्माजी तो उन पुरुषो मे है, जो अपनी धारणा के अनुसार अपने विचारो को नि सकोच और निर्भय होकर प्रकाशित करते है और उनमे गलती मालूम होने पर एक वच्चे की सरलता के साथ तुरन्त स्वीकार कर लेते है। ऐसे व्यक्ति के प्रति रोष और कटूक्तियो से काम लेने मे कोई लाभ नही है। उन्हे तो अपने विचारो और युक्तियो से अपने मन्तव्यो की सत्यता समझाने की चेष्टा करनी चाहिए।

वर्तमान विवाद मे समझ लेने लायक वाते सिर्फ दो है : १. अहिसा का मूल और वास्तविक स्वरूप क्या है; २. प्राण-हरण का अहिसा मे स्थान है अथवा नही है, तो कितना और किन-किन अवस्थाओ मे? कुछ मित्रो ने इसके सम्वन्ध मे मुझे भी लिखा है, मुझसे चर्चा की है और एकाव पत्र ने मेरा जिक्र भी किया है, अतएव इस सम्वन्ध मे अपनी धारणा प्रकट करना

मेरा कर्तव्य हो जाता है। दूसरे पाठको को भी इस विवाद से लाभ पहुचाना मेरा कर्तव्य है।

मेरी समझ मे अहिसा की सीधी व्याख्या यह है कि अपने स्वार्थ-साधन के लिए किसी भी मनुष्य या प्राणी को मन, वचन या कर्म से कष्ट न पहुचाना, मनुष्यता और पशुता मे मानव-भाव और पशु-भाव मे मैंने यही विभाजक रेखा, यही मर्यादा समझी है। अर्थात मेरी दृष्टि मे वह व्यक्ति उतना ही अधिक मनुष्य है, उसमे उतना ही अधिक मानव-भाव है, जितना अधिक वह अपने लाभ व सुख के लिए दूसरे को कष्ट न पहुचाता हो और वह उतना ही अधिक पशु है या उसमे उतना ही अधिक पशु-भाव विद्यमान है, जितना कि वह अपने लिए दूसरो को कष्ट पहुचाता हो। इससे हम इस परिणाम पर पहुचते है कि अहिसा के लिए दो शर्तें अनिवार्य है .

(१) अपना या अपने समाज का स्वार्थ न हो और

(२) किसी प्राणी के शरीर, मन या आत्मा को कष्ट न पहुचाता हो।

बछडे को जहर देने मे अहिसा की इन दोनो शर्तो का पूरा-पूरा पालन हो जाता है—१. उसके मारने मे महात्माजी का या आश्रम-वासियो का कोई स्वार्थ-भाव नही था और २ न केवल उसके शरीर, बल्कि मन या आत्मा को भी कष्ट नही पहुचाया गया, बल्कि उसके कष्ट की वेदना और व्याकुलता का अन्त कर दिया गया, उल्टा उसे सुख पहुचाया गया।

अब रहा यह प्रश्न कि आखिर यह प्राण-हरण तो हुआ ही। और आगे चलकर यह कहा जाता है कि प्राण-हरण से बढ़कर कष्ट और हिसा दूसरी क्या हो सकती है? यहा हमको

यह सोचना चाहिए कि अहिसा के लिए जिस मूल-स्वरूप को मान कर हम चले है, वह हमे कहा ले जाता है। क्षणभर के लिए हम इस वात को भूल जाय कि आजतक हम अहिसा के नाम पर किसी चीज को मानते चले आये है और उसके सम्वन्ध मे किस ग्रन्थ मे क्या लिखा है। अहिसा मे मुख्य वात है कष्ट न पहुचाने की। अव यदि प्राण रखने से कष्ट अधिक पहुच रहा है और प्राणनाश से कष्ट का अन्त हो जाता है तो एक अहिसक की अन्तरात्मा ऐसे समय क्या कहेगी और उसे क्या करने की प्रेरणा करेगी? उत्तर स्पप्ट है, जिससे कप्ट का अन्त हो, वही करो, और यही महात्माजी ने किया है।

इस पर यह कहा जाता है कि प्राण-हरण स्वय ही एक महा कप्ट देने की क्रिया है, अतएव घोर हिसा है। इस पर महात्माजी का कहना यह है कि मृत्यु तो, जन्म की तरह, प्रकृति का एक सामान्य नियम है। हम, भारतवासियो ने, ख्वामख्वाह उसे एक हौवा वना रखा है। हा, अपने या अपने समाज के लाभ के लिए जव किसी का प्राण-हरण या जीवन-नाश किया जाता है, तव वह दोप अवश्य है और तव वह हिसा जरूर है। पर यदि उस प्राणी के लाभ के लिए, उसकी पीडा दूर करने के लिए प्राण-

विचार है, तव समाज को कष्ट पहुचानेवाले पशुओ और आत-तायी मनुष्यो का वध करना क्योकर हिसा कहा जा सकता है, जवकि भावना विल्कुल शुद्ध है और जवकि लोकहित ही हमारा परम उद्देश्य है ? इसका उत्तर यह है कि अहिसा मे भावना की शुद्धि तो सर्वत्र अनिवार्य है और भावना-शुद्धि का अर्थ लोक-हित नही, वल्कि वध्य माने जानेवाले प्राणी को कप्ट न देने का भाव है। भाव-शुद्धि के साथ कृति भी अहिसक होनी चाहिए। कृति की शुद्धता भी उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि भाव की शुद्धता। मार डालने की क्रिया, आजतक की धारणा के अनुसार शुद्धता की परिभाषा मे नही आ सकती। तो यदि आजकल की धारणा को ही निर्भ्रम और ठीक मान ले तो फिर यह कह सकते है कि सिर्फ ऐसे ही प्रसगो पर कृति की अशुद्धता अपवाद मानी जा सकती है, क्योकि अहिसा के मूल स्वरूप के अनुसार वह हिसा नही कही जा सकती। अव यह दूसरी वात है कि हिसा के एक दोप के होते हुए भी हमे, जवतक जिदगी है, लाचार होकर, कई तरह की हिसा करनी पडती है। पर इसी-लिए हम उसे अहिसा या निर्दोष नही कह सकते। हा, क्षम्य और अक्षम्य हिसा ये दो भाग तो किये जा सकते है, पर हिसा अहिसा मे किसी प्रकार नही खप सकती।

इसी तरह समाज के लाभ के लिए यदि किसी पशु या मनुष्य का वध करना, या उसे कष्ट पहुचाना अनिवार्य हो गया हो तो उसे हम क्षम्य कोटि की हिसा गिन ले, यह तो शायद हो सकता है, पर उसे अहिसा तो किसी तरह नही कह सकते। फिर सामाजिक दृष्टि से पशु-वध से मनुष्य-वध ज्यादा भयकर और ज्यादा सदोष है, क्योकि मनुष्य बुद्धिमान और हृदयवान

है, इसलिए अनेक प्रकार के प्रभावों का असर उस पर हो सकता है और फलस्वरूप उसके सुधार की बहुत आशा रखी जा सकती है। अतएव अहिंसा में कोरी भावना-शुद्धि को अपने मतलब की बात समझकर यदि कोई भाई उससे समाज की रक्षा के लिए मनुष्य-वध को जायज़ और अहिंसात्मक मानने और समझने लगे तो मेरी राय में वह अपनी समझ के साथ अन्याय करेगा और आत्म-वंचना के दोष से लिप्त होगा।

अत. हम उतावले और आपे-से बाहर होकर नहीं, धीरज और शान्ति के साथ पूर्व निश्चित धारणाओं से मुक्त होकर, महात्माजी की युक्तियों पर विचार करें। उनमें हमको बहुत बल दिखाई देगा।

२७

वापू होते तो ?

वैसे तो एक हलके मे यह महसूस हो रहा हे कि हमने वापू को भुला दिया और जैसे २५०० वर्ष वाद भगवान वुद्ध अव जीवित हुए, वैसे ही सैकडो वर्षो के वाद लोगो को गाधीजी की, सही माने मे, याद आवेगी। फिर भी चीन के हमले के वाद सवको, अलग-अलग तरह से, वापू की याद आ रही है। किसी ने कहा—साहस, हौसला, हिम्मत, हमे वापू ने सिखाई—जिसकी आज सवसे ज्यादा जरूरत है। किसी ने कहा—निर्भयता वापू की सवसे वडी देन है। अहिसा का पाठ उन्होने पढाया ज़रूर, परन्तु वह निर्भयता, अभय, अहिसा की पहली सीढी है। किसी ने वताया—वापू होते तो कश्मीर की तरह चीन के मुकावले मे सेना और शस्त्र के प्रयोग का समर्थन करते। कुछ अहिसावादी सोचते है कि वापू कोई-न-कोई नया मार्ग जरूर सुझाते। अभी एक शान्ति या मैत्री यात्री-दल एक मार्च को दिल्ली से पेकिग रवाना हुआ है। उसकी तरह का उससे भी आगे का कोई कदम उठाते। वह शान्त या चुप नही वैठे रहते। अलग-अलग लोगो का जो कुछ कहना हो, वह आशिक रूप मे सही हो या गलत, वापू की याद किसी-न-किसी रूप मे सवको आई। और चाहे मन का समाधान न हुआ हो, पर हरएक के दिल मे यह सवाल जरूर उठा है, उठता है कि वापू होते तो क्या करते ? इस विषय पर विचार करना मुझे आवश्यक और उपयोगी मालूम होता है।

अव्वल तो इस तरह सोचना ठीक नही है कि कोई इस समय होता तो क्या करता, क्योकि कोई कदम उठाने से पहले जितने पहलुओ से सोचना पडता है, उसका अन्दाज सही-सही लगाना मुश्किल है। फिर व्यक्ति-विशेष किस परिस्थिति में क्या सोचेगा, किस वात को कितना वजन देगा, कितना नापसद करेगा—यह कहना वहुत कठिन है। खुद हम भी अपने लिए यह ठीक-ठीक निर्णय नही कर सकते कि अमुक परिस्थिति मे हम होते या हो, तो क्या करते—या करेगे ? अलबत्ता, हर शख्स के सोचने के, तौलने के कुछ तरीके होते है, कुछ अन्दाज होते है, रुचि, अरुचि, स्वभाव-सस्कार, साधना जानकारी कई वाते ऐसी होती है कि जिनको मिलाकर ही कोई कदम उठाया जा सकता है। अत हम निश्चित रूप से नही कह सकते कि महात्माजी होते तो इस समय क्या करते या क्या सलाह देते ? अलवत्ते, हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते है कि वह जो कुछ भी कहते या करते, वह सत्य और अहिसा की व्याख्या और सीमा के अन्दर ही होता। महात्माजी भी सत्य और अहिसा को मानते थे, विनोवा भी मानते है और जवाहरलालजी भी अपने ढग से मानते है। तीनो इस वात से तो सहमत होगे कि हम जो कुछ करे, वह हमारे मान्य सिद्धान्तो, आदर्शो और मूल्यो के अनुकूल हो—प्रतिकूल न हो। और चीन के मामले मे जो कुछ किया गया है, वह इन मूल्यो को सामने रखकर ही किया गया है—इसमे मुझे कोई सन्देह नही है।

तो आप पूछेगे कि क्या सेना और शस्त्र से मुकावला करना अहिसा के अन्तर्गत है ? इसका उत्तर देते हुए अहिसा सिद्धान्त और अहिसा नीति पर थोड़ा विचार कर लेना अच्छा होगा।

सिद्धात और आदर्श के रूप मे अहिसा का अर्थ है—मन, वचन, और काम से किसी को कष्ट न पहुचाना—मारना तो दूर की वात है। परन्तु इस आदर्श अहिसा का दावा तो स्वय महात्माजी ने भी अपने लिए नही किया। ऐतिहासिक काल मे बुद्ध से भी वढकर ऐसी साधना महावीर के जीवन मे अलवत्ते मिलती है। लेकिन यह भी व्यक्तिगत साधना की वात हुई। राष्ट्रीय समस्या कोई किसी एक या दो व्यक्ति की परम साधना के वल पर नही सुलझाई जा सकती। यह देखना होगा कि सारे राष्ट्र मे अहिसा की सिद्धि कितनी हो पाई। यदि चीन का मुकावला करना है तो अकेले महात्माजी की, विनोवाजी की या जवाहरलालजी की या दूसरे किसी महापुरुप की अपनी अहिसा-साधना से ही काम नही चल सकता था—सारे देश का वातावरण अहिसा से ओतप्रोत होने की आवश्यकता थी—जैसा कि आज शस्त्र और सेना के द्वारा मुकावला करने के लिए सारा देश, देश का वच्चा-वच्चा तैयार हो गया है।

यह अहिसात्मक तैयारी क्यो नही हो पाई ? एक तो यह मानव-जाति के विकास का सवाल है—साधना और सगठन की अपेक्षा रखता है। वापूजी यदि रहते और शान्ति-सेना जैसी चीज पर कटिवद्ध हो जाते तो कुछ आशा हो सकती थी। अव विनोवा ने जरूर शान्ति-सेना का उपक्रम शुरू किया है, इधर जवाहरलालजी ने भी जहा एक ओर शान्तिसेना जैसी चीज को वढावा दिया, तो वहा शस्त्र-सेना भी तो नही वढाई। विकास के कामो मे ही सारी शक्ति लगाई। इधर पचशील के प्रचार के द्वारा विश्व मे सैन्य शक्ति कम करने, शस्त्र कम करने या न रखने की दिशा मे अहर्निश प्रयत्न किया और एक ऐसी हवा

पैदा हुई, जिसमे कैनेडी और ख्रुश्चेव दोनो आये दिन इसी दिशा मे सोचने और कुछ करने के लिए प्रयत्नशील है, यहा तक कि ससार मे स्पष्ट रूप से दो विचारधाराए बन गई—एक तो शान्तिवादी, जैसे ख्रुश्चेव और कैनेडी आदि। दूसरी शस्त्र-सैन्यवादी, जैसे चीन। अभी चीन ने जो भारत पर विश्वास-घाती हमला किया, उसपर विश्व के राष्ट्रो ने जो अपनी प्रतिक्रिया दिखाई, वह साबित करती है कि अधिकाश भूभाग के लोग नि शस्त्रीकरण को—अर्थात शान्तिवाद को पसन्द करते है। मै तो समझता हू कि आगे-पीछे चीन को भी यह स्थिति स्वीकार करने पर मजबूर होना पडेगा, इसलिए कि मनुष्य मूलरूप से शान्तिप्रिय है। वह अशान्ति, कलह, सघर्ष, शस्त्र का आश्रय मजबूरी की हालत मे ही लेता है। जो हो, सार यह है कि यद्यपि शस्त्र-सेना की तरह ससार मे अभी शान्ति सेना की प्रतिष्ठा नही हुई है, तो भी सारा वातावरण शान्ति के पक्ष में है। सब लोग मानने लगे है कि सशस्त्र युद्ध से जय-पराजय हो सकती है, परन्तु न्याय नही हो सकता, प्रश्न नही सुलझ सकते। प्रश्न और समस्या तो बातचीत, समझौता, विचार-विनिमय के द्वारा ही भलीभाति हल हो सकते है। प० जवाहरलालजी ने भी कई बार कहा है, और सच कहा है कि मै मुख्य रूप से शान्ति-प्रिय हूं। भारत शान्ति चाहता है, चीन ने यह सघर्ष हमारे सिर, जबरदस्ती थोप दिया है, हमे सशस्त्र, ससैन्य मुकाबला करने के लिए मजबूर कर दिया है।

मे विश्वास रखते है। आज के सकट के समय इन मूल वातो पर विश्वास रखना और भी जरूरी है। अगर हम इन सिद्धान्तो को चीन के दवाव मे आकर छोड देगे तो वह गलत काम होगा। और गलती के आगे झुक जाना होगा—चीन का मुकावला करने मे हम अपने सिद्धातो को नही छोडेगे।—श्री कैनेडी और ख्रश्चेव दोनो ही शान्ति के लिए प्रयत्नशील है।"

यह दिखलाता है—चीन की हरकतो के फलस्वरूप—सारे विश्व मे यह वात प्रकट हो गई है कि ससार सत्याग्रह की ओर जा रहा है—अर्थात सत्य और न्याय के पक्ष मे अपनी आवाज बुलन्द करता है और राप्ट्रीय तथा अन्तर्राप्ट्रीय प्रश्नो, विवादो, झगडो का निपटारा शस्त्र से नही, शान्ति से, विचार-विनिमय से करना चाहता है। मे समझता हू कि यह वापू की उनके सत्याग्रह की—शान्तिवाद की विजय है—यद्यपि ऊपर-ऊपर से ऐसा नही दिखाई देता हो।

१९६४

परिशिष्ट

१

वापू की महिमाएं

वापू के वलिदान के वाद यह स्वाभाविक था कि हिन्दुस्तान मे ही नही, सारे ससार मे उनके प्रति भक्ति-भाव की वाढ उमडती। ससार की ऐसी अद्वितीय शक्ति के एकाएक तिरोहित हो जाने से जहा उसके प्रति वफादारी की भावनाए जागी, वहा एक महान अन्धकार-सा—शून्य-सा—भी दिखाई दिया। दोनो का यह परिणाम हुआ कि लोगो की सुप्त या गुप्त सरस्वती सहस्त्र मुख से उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने लगी—इस निमित्त उत्तम ज्ञान, स्फूर्ति, प्रकाश का सजीव साहित्य निर्मित होने लगा। जो वापू के अत्यन्त घनिष्ट, निकटवर्ती थे, उन्होंने वापू के माहात्म्य व रहस्य को खोलना शुरु किया। मेरा खयाल है, भारत मे शायद हिन्दी को ही यह गौरव प्राप्त हुआ है कि वह 'वापू' पर इतनी जल्दी अधिक-से-अधिक पुस्तके प्रकाशित कर सकी। इस समय मेरे सामने सात पुस्तके है, जिनमे तीन वापू के कुटुम्बी, उनके दाए-बाए-हाथ-जैसो की लिखी हुई है व उनकी प्रिय प्रसिद्ध व आदि प्रकाशन-सस्था नवजीवन ट्रस्ट, अहमदा-वाद से प्रकाशित हुई है, जिसने अव हिन्दी प्रकाशन भी जोरों से शुरू कर दिया है। एक है—महादेव भाई की डायरी, दूसरी है—काका साहव कालेलकर की 'वापू की झाकिया', तीसरी है—कुमारी मनुवहन की 'वापू—मेरी मा'। महादेव भाई को वापू का सवाई कहे, तुलसीदास कहे, व्यास कहे, या हनुमान

कहे; वापू के साथियो या कुटुम्वियो मे उनका अनुपम स्थान है। वह वापू की सजीव साकार भक्ति थे। हनुमान जैसे मणिमाला की मणियो मे राम को खोज रहे थे, उसी तरह वापू महादेव भाई के रोम-रोम मे व्याप्त थे। यह डायरी उनके अपने आराध्य-देव की पूजा-जैसी है। इसका एक-एक पृष्ठ, एक-एक वाक्य नित्यपाठ करने योग्य है। इसके चरित्र-नायक यद्यपि वापू है, तथापि महादेव भाई इसमे पुष्प मे सुगन्ध की तरह समाये हुए है। इसमे वापू का केवल यह सिद्धान्त ही नही मिलेगा कि 'सत्य ही परमेश्वर है', वल्कि यह ज्ञान भी परिपूरित मिलेगा कि 'सर्व भूतहित' अर्थात अहिसा के विना उसकी उपलब्धि असंभव है। इस ज्ञान व आदर्श की उनकी साधना कठोर, जाग्रत, सविस्तर, गभीर, सूक्ष्म, और उनकी तपस्या, कार्यक्रम को अमल मे लाने की लगन, दैनिक आचार मे अद्भुत तत्परता भी इसके पन्ने-पन्ने से टपकती है। इस तरह वापू का सर्वांगीण जीवन, सम्पूर्ण ज्ञान व चरित्र की यह देन महादेव भाई ने हमे दी है, जिसके लिए हम उनसे कदापि उऋण नही हो सकते।

इसमे हमारे सरदार का भी नारियल की तरह कठोर व भीतर से सरस जीवन वड़े स्वाभाविक ढंग से खिल गया है। सरदार-जी की तीखी जवान, कडे स्वभाव की कठोरता से सव डरते है, परन्तु माता की ममता, व भक्त की नम्रता, शिष्य की साधना का जो दर्शन इस डायरी मे होता है, वह 'शिव' के रुद्र व मगल स्वरूप की याद दिलाता है।

दूसरी पुस्तक है 'वापू की झाकियां'। काका साहव वापू के जाग्रत व पुराने साथी है। उनकी भूमिका शिक्षक की, उपदेशक

की, प्रचारक की रही है। साहित्य, कला, राष्ट्रीय शिक्षण उनके मुख्य माध्यम रहे है। लेखन-कला के वह आचार्य है, खासकर बापू के राष्ट्रीय शिक्षा, सास्कृतिक सुधार व राष्ट्रभाषा प्रचार मे दाहिने हाथ रहे है। पीछे तो बापू पर उनकी ऐसी श्रद्धा हो गई थी कि अपने विचारो का आग्रह छूटकर बापू के विचारो मे ही उनके विचार एकरूप हो जाते थे। उनका अध्यापन, भ्रमण, अनुभव बहुत व्यापक व विशाल है। 'बापू की झाकिया' बापू के साथ उनके प्रत्यक्ष अनुभव की ज्ञान-मूर्त्ति है। उनसे बापू के अद्भुत एव करुण-कठोर जीवन के अनेक पहलुओ पर गहरा प्रकाश पडता है। बापू-सबधी अपने सस्मरण या अनुभव औरो ने भी लिखे है, परन्तु इनमे गागर मे सागर भर गया है। काकासाहब के शब्दो मे, "इसमे बापू का सम्पूर्ण दर्शन न हो, पर ये झाकिया बापू तक पहुचाने की, उनके अन्तस्तल मे गहरे गोते लगा पाने की अचूक सीढिया है, इसमे कोई सन्देह नही।"

दो छोटे-छोटे उदाहरण काकासाहब के शब्दो मे ही लीजिये :

"चम्पारन से एक दिन बापू का खत आया। उन दिनो हमारा आश्रम कोचरब मे किराये के बगले मे था। खत मे लिखा था ·

'अब वहा बारिश शुरू हुई होगी। न हुई हो तो जल्दी होगी। अब हवा की दिशा बदल जायगी। इसलिए आजतक जिस गड्ढे मे पाखाने के डब्बे खाली करते थे, वहा आइंदा न किये जाय. नही तो उधर की हवा से बदबू आने की संभावना है। इसलिए पुराने गड्ढे पूर दिए जाय और अमुक जगह मे नये गड्ढे खोदे जाय।'

"इस पत्र को देखकर मै वहुत प्रभावित हुआ। वापू चम्पारन मे जाच-पडताल का काम भी करते है और आश्रम की इन छोटी-छोटी वातो की फिक्र भी रखते है।

"मुझे क्षय रोग हुआ तो मै स्वास्थ्य लाभ के लिए पूना के पास सिहगढ पर जाकर रहा था। स्वास्थ्य सुधरने पर आश्रम मे जाकर रहने लगा। आश्रम मे पहुचे मुझे कुछ देर ही हुई थी कि एक लडकी थाली मे अच्छे-अच्छे फूल लेकर आई। कहने लगी, 'ये वापू ने आपके लिए भेजे है।' मेरी आखो मे आसू आ गये। वह आगे बोली, 'वापू ने हमसे कहा है कि काका के पास रोज इसी तरह फूल पहुचाती रहो। काका को फूलो से वडा प्रेम है'।"

तीसरी पुस्तक है 'वापू—मेरी मा'। इस नन्ही-सी पुस्तक की लेखिका नन्ही मनु वहन गाधी है, वा के न रहने पर जिसकी मा वनने की जिम्मेदारी बापू पर आ पडी थी। वापू वैसे 'राष्ट्रपिता' के नाम से प्रसिद्ध थे, पर पिता से अधिक वह 'माता' थे—इसे शायद कम लोग जानते थे। पिता उपयोगिता देखता है, उसके लिए निरपेक्ष रहना कठिन होता है, परन्तु माता आशा-अपेक्षा से दूर, केवल स्नेह, ममता, वात्सल्य की ही वृद्धि करना जानती है। पुत्री मनु ने अपनी मा वापू के कुछ सुन्दर अनुभव इसमे छपाए है, जिनसे उनके खाली जीवन के इस पहलू पर अच्छा प्रकाश पडता है। पहला प्रयास होने पर भी इन अनुभवो मे सजीवता और सरसता लाने मे मनुवहन काफी सफल हुई है। एक जगह वह लिखती है

"जिस तरह एक मा अपनी वच्ची की परवरिश करती है, उसी तरह वापू ने मुझे पाला था। यो तो उनके पास कई

'वसुधैव कुटुम्वकम्' की भावना मे और उनकी निर्भयता मे निहित है। वह एक क्रांतिकारी शोधक और सुधारक थे। वह प्रथम कोटि के सेवक व तपस्वी थे। सत्य को वह ईश्वर मानते थे तथा निर्भय और प्रेम को सत्य-रूपी परमेश्वर को प्राप्त करने के साधन।"

अव 'श्रद्धाकण' का खट-मीठा स्वाद चखे। यह वापू के स्वतन्त्र, सजग, किंचित आलोचक, भक्त वनने से इन्कार करते हुए भी अनन्य साहित्यिक विद्वान, टीकाकार, श्री वियोगी हरि के हृदय के सुन्दर काव्योद्गार है। हरिजी ने अपने समर्पण के चुने हुए कुछ शब्दो मे 'वापू' का यथार्थ चित्र खीच दिया है— "अंधेरे मे भटकती मानवता को, जिसने प्रति क्षण प्रकाश-कण दिखाया, उसी करुणावतार महात्मा के श्री चरण मे।" इसमे लेखक ने आख खोलकर वापू को देखा है और उनके अनुयायियो पर उलाहने की मीठी फुलझडिया छोडी है। हरिजी भले ही इसे 'स्तवन' न कहे, पर सचमुच ही यह रूठने, मचलने व प्रेम के तीखे पुष्पवाण छोडनेवाले और पिता के सिर की चोटी के वाल नोचनेवाले लाडले पुत्र का खट्टा-मीठा स्तवन ही है, जो अपने षट्‌रस के कारण हृदयग्राही हुआ है। हरिजी के शब्दो मे ही तीन चित्र लीजिये —

बारवार उसने सचेत किया था—
"मैने क्या-क्या कहा उसके अक्षरो से न चिपट बैठना तुम लोग,

तुम तो अतर्निहित अर्थ को ग्रहण करना—
और वह भी सत्य के काटे पर तोल-तोलकर।"

पर उपेक्षा से देखा गया उसकी चेतावनी को,
और वे अनुयायी अक्षरो को ही पकड़कर बैठ गये !
पत्थर को देवता न बनाकर देवता को पत्थर बना देना ही
अनुयायियो का स्वभाव सदा से रहा है क्या ?

× × ×

उसके सिधार जाने के पीछे एक-दो शोकाकुल शिष्यो ने तो
यहां तक कहा––
"वह तो गया––अब किससे पूछे ?
क्या अच्छा हो कि कुछ क्षणो के लिए वह लौट आये,
और बता जाय कि––
उसके इस देह-पिड का अतिम सस्कार हम किस विधि से करे ।"
उन शिष्यो की यह उत्कट भक्ति-भावना थी,
या पराश्रय की परकाष्ठा ?
निश्चय ही उस युग-गुरु ने इस प्रकार की धर्म-देशना कभी
नही दी थी ।
वह तो आखो को खोलने आया था, बद करने नही

× × ×

भक्तो ने कहा––
"तू भी आज सबके साथ उस महात्मा का कुछ मगल
स्तवन कर ।"
करना चाहा भी, पर कुछ बना नही ।
सबकुछ कुठित हो गया ।
तब स्तवन कैसे होता ?
कुछ था भी, तो उसका कण-कण बिखर गया ।

उन सचित कणो को कोई कहना चाहे तो भले ही
स्तवन कहे—
नही तो इन उद्‌गारो मे ऐसा क्या है
जो उस महात्मा के चरणोतक पहुच सके ?

× × ×

'राष्ट्रपिता' हमारे दुलारे प्रधानमत्री, वापू के राजनैतिक, व मै कहूगा, सास्कृतिक-उत्तराधिकारी, व्याकुल-मन जवाहरलाल के सजीव व भावपूर्ण विचारो का सग्रह है। जवाहरलाल वापू के विचारो मे लडाका, परन्तु कदम मे साथ चलनेवाले वीर और सच्चे सैनिको मे है। वापू के सभी कार्यक्रम, सारी दिनचर्या, व्रत-नियम उतने अपील नही करते, जितने उनके बुनियादी सिद्धान्त, उनका आदर्श, यही उनके व वापू के वीच विभाजक रेखा है। किन्तु जवाहरलाल की खूबी यह है कि, वह 'सत्य', 'अहिसा' की दुहाई न देते हुए भी विल्कुल चीटी तक को मारने से वचते है, और गाधीजी के बाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के सभी मामलो मे सत्य, न्याय का भरसक पालन करते है। वापू के प्रति उनकी भावना अविचल है, जो उन्हीके शव्दो मे सुनिये

"जहा-जहा मै हिन्दुस्तान के वाहर गया—हर जगह गाधी का नाम पहुचा था, गाधी की शोहरत पहुची थी। गैरो के लिए गाधी हिन्दुस्तान था और हिन्दुस्तान गाधी। दुनिया ने तसलीम किया कि एक अजीव ऊचे दर्जे का आदमी हिन्दुस्तान मे पैदा हुआ—फिर अधेरे मे रोशनी आई। जो सवाल लाखो के दिलो मे थे और उनको परेशान करते थे, उनके जवावो की कुछ झलक नजर आई। आज उस जवाव पर अमल न हो तो कल

स्थापित कर लेते थे। इन पत्रो मे कृष्ण की लीलाओ की तरह स्वय वापू के जो विभिन्न रूप प्रकट हुए है, तथा उनके पुण्य जीवन के जो पहलू व्यक्त हुए है उनका भी अपना एक अलग महत्त्व है। इन पत्रो मे वापू ने जीवन के लगभग सभी अगो को स्पर्श किया है।

वापू के ये पत्र अथाह सागर के समान है, जिसमे जहा भी गोता मारिए, मोती हाथ लगेगा। विनोद, गम्भीर उपदेश, नेक सलाह तथा स्वास्थ्य सम्वन्वी निर्देश से भरे हुए इन पत्रों का, जो आजकल उनकी अमूल्य घरोहर वन गए है, अपना अलग महत्त्व है। ऐसे पत्रो के कुछ नमूने देखिये :

अन्तर्जातीय विवाह करनेवाले एक धनी परिवार के व्यक्ति को सलाह और सान्त्वना देते हुए वह अपने एक पत्र में लिखते है :

"मेरा विश्वास है कि यदि जातिवालो का विरोव आप वरदाश्त कर सकेंगे तो आखिर मे फल अच्छा होगा। आसुरी प्रकृति कार्य कर रही है, इसलिए थोड़ी-बहुत अशांति अवश्य होगी। उससे डरने की कुछ आवश्यकता नही है। प्रयत्न-

: २

बापू का पत्र-साहित्य

पत्र लेखन एक कला है। गाधीजी इस कला मे वहुत निपुण थे। उनके वहुविध पत्रो की सख्या हजारो तक पहुचती है। अकेले मीरावहन, उनकी एक प्रधान यूरोपियन शिष्या, के पास ६०० से ऊपर उनके पत्र है। ऐसे सैकडो व्यक्ति भारत मे तथा बीसियो विदेशो मे होगे, जिन्हे वह समय-समय पर वडे चाव से पत्र लिखा करते थे। उन्होने वाइसराय और दूसरे देशो के अन्य राजनीतिज्ञो तथा अन्य उच्च-पदस्थ राजनेताओ से लगाकर भारत के एक साधारण कार्यकर्ता तक को पत्र लिखे है। इनमे हर जाति, वर्ग, वय, देश, सस्कृति और धर्म के लोग थे। इन विभिन्न व्यक्तियो मे स्तर का भेद होते हुए भी, ऐसा लगता है, मानो सभी लोग उनके एक विशाल परिवार के सदस्य हो और एक कार्यकर्ता के सहयोग की उन्हे उतनी ही आवश्यकता थी, जितनी कि एक वाइसराय अथवा किसी नेता की।

बापू ने अपने चारो तरफ अपने व्यक्तित्व और अपनी विचारधारा से प्रभावित हजारो कार्यकर्ताओ तथा मित्रो का जो वातावरण बना रखा था, उसका वहुत कुछ श्रेय उनके पत्र-लेखन को है। उनके दैनिक कार्य का एक वडा भाग पत्र लिखने मे ही व्यतीत होता था। वह अधिकाश पत्र स्वय अपने हाथ से लिखते थे। इससे यह दूसरो के साथ एक अजीव अपनापन

स्थापित कर लेते थे। इन पत्रो मे कृष्ण की लीलाओ की तरह स्वय वापू के जो विभिन्न रूप प्रकट हुए है, तथा उनके पुण्य जीवन के जो पहलू व्यक्त हुए है उनका भी अपना एक अलग महत्त्व है। इन पत्रो मे वापू ने जीवन के लगभग सभी अंगो को स्पर्श किया है।

वापू के ये पत्र अथाह सागर के समान है, जिसमे जहा भी गोता मारिए, मोती हाथ लगेगा। विनोद, गम्भीर उपदेश, नेक सलाह तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देश से भरे हुए इन पत्रों का, जो आजकल उनकी अमूल्य धरोहर वन गए है, अपना अलग महत्त्व है। ऐसे पत्रो के कुछ नमूने देखिये :

अन्तर्जातीय विवाह करनेवाले एक धनी परिवार के व्यक्ति को सलाह और सान्त्वना देते हुए वह अपने एक पत्र में लिखते है

"मेरा विश्वास है कि यदि जातिवालो का विरोध आप वरदाश्त कर सकेगे तो आखिर मे फल अच्छा होगा। आसुरी प्रकृति कार्य कर रही है, इसलिए थोड़ी-वहुत अशाति अवश्य रहेगी। उससे डरने की कुछ आवश्यकता नही है। प्रयत्न-पूर्वक निग्रह करते रहने से आसुरी प्रकृति का नाश हो सकता है। परन्तु दिल मे पूरा विश्वास होना चाहिए कि दैवी प्रकृति को ही सहायता देना हमारा कर्तव्य है। मुझे फिक्र आपके पिता और वन्धु के लिए है। यदि वे आपके पक्ष का संगठन कर सग्राम चाहते है, और न ला सके तो आपके ही कुटुम्व मे दो विरोधी प्रवृत्ति होने की सम्भावना है। ऐसे मौके पर धर्म-सकट खड़ा होता है। मै तो अवश्य उनसे भी प्रार्थना करूंगा

कि आपके ही हाथ से जाति मे दो गिरोह पैदा न हो।

"जो चीज आपने अच्छी समझ कर की है और जिसकी योग्यता के लिए आज भी आप लोगो के दिल मे शका नही है, उसके लिए माफी मागना मै हर्गिज उचित नही समझूगा।"

एक पत्र मे वह मीरावहन के खत की भाषा-सम्वन्धी त्रुटियो को वताते हुए लिखते है

"तुम्हारा हिन्दी-पत्र वहुत अच्छा लिखा गया है। हस्पताल से 'छोडेगा' नही, परन्तु 'छूटेगा' चाहिए। 'छोडेगा' सकर्मक क्रिया है और इसलिए उसके पहले 'से' विभक्ति नही लगती, मगर 'छूटेगा' अकर्मक है, इसलिए उसके पहले 'से' लगता है।"

समय पर पत्र लिखने, डाक मे डालने तथा पते पर पहुचने के वारे मे वह कितने सावधान रहते थे, इसके वारे मे स्व० महादेव भाई से कहा कि इसे फला स्टेशन पर डाक मे डलवा देना। वापू ने हिसाब लगा लिया था कि उस स्टेशन पर डाले जाने से वह समय पर पहुच कर पानेवाले की सान्त्वना का कारण वनेगा। परन्तु दुर्भाग्य से महादेव भाई पत्र डालना भूल गए। उन्होने उसके समय का महत्त्व समझा ही नही था। वह नये-नये ही आये थे। इसपर वापू वहुत विगडे और आधे घटे तक महादेव भाई को डाटते रहे और शोक के अवसर पर, ठीक समय पर पत्र के पहुचने का कितना महत्त्व है, यह वताते रहे।

सरदार पटेल को अपने एक पत्र मे अनेक राजनैतिक विषयो पर कितने थोडे शब्दो मे गम्भीर सलाह देते है .

"इसके साथ ब्रजकृष्ण का दिल्ली के विवाह के सम्बन्ध मे पत्र है। उसे पढकर फाड डालिए। मैने साफ लिख दिया है कि पूछे, तो भी मै इस झगडे मे नही पडूगा। रोज ऐसी ही खबरे आती रहती है। सबको अपनी-अपनी पडी है, देश की किसी को नही। ऐसी हालत मे कैसे किनारे पहुचेगे, यह समझ मे नही आता।"

"बगाल से मेरे पास भी अणे के विरुद्ध तार आये है। मैने साफ लिख दिया है कि उनकी निष्पक्षता के बारे मे किसी को शका नही करनी चाहिए। उनपर पूरा भरोसा रखना चाहिए।"

"मालवीयजी ने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' पर अवार्ड के बारे मे नीति बदलने का हुक्म जारी किया है। इसलिए घनश्यामदास ने त्यागपत्र भेज दिया है। त्यागपत्र मे अपना मतभेद प्रकट करनेवाली दलीले काम मे ली है। अब देखना है, क्या होता है। पता नही, दोनो को क्या सूझी है।"

"राजेन्द्रबाबू के तार पर से ए० पी० को एक समाचार भिजवाया है, जो आप अखबारो मे देखेगे। नकल होगी तो भेज देगे। ऐसी चीजे आप भी वहा से निकाला करे तो ठीक रहे। मौलाना ने तार से पूछा है कि काग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी क्या है? मैने उन्हे तार दिया है कि इसका उत्तर तो प्रेसीडेन्ट को देना चाहिए। मै भी कुछ लिखूगा, मगर आप वल्लभभाई को तार दीजिए, अब तार आये तो देख ले।"

"राजाजी का आज जो पत्र आया है, वह आपके पढने

लायक है। पढकर फाड डाले। लिखना हो, तो लिखे। मद्रास जाने की शक्ति आ जाये और समय मिले तो हो आइए। प्रफुल्ल घोष आ गए है। वह बगाल की सडाध की वात सुना रहे है, जो वडी दुखद है।"

एक धनिक विद्यार्थी को गुरु की तरह एक पत्र मे उपदेश देते है

१ कम वोलना।

२ सवकी सुनना लेकिन जो ठीक हो वही करना।

३ हर मिनट का हिसाव रखना और जिस क्षण का काम हो उसी क्षण करना।

४ गरीबो के समान रहना। धन का अभिमान कभी मत करना।

५ पाई-पाई का हिसाव रखना।

६ अभ्यास ध्यानपूर्वक करना।

७ इसी प्रकार कसरत करना।

८ मिताहारी रहना।

९ डायरी लिखना।

१० बुद्धि की तीव्रता की अपेक्षा हृदय का वल करोडो गुना कीमती है, अत उसका विकास करना। उसके विकास के लिए गीता का, तुलसीदास का, मनन आवश्यक है। 'भजनावली, रोज पढना। प्रार्थना रोज दोनो समय करना।

११ मुझे अपने कार्य के हिसाव का एक पत्र हर हफ्ते लिखा करेगा तो तेरा कल्याण है।"

स्व० जमनालालजी की धर्मपत्नी, श्रीमती जानकीदेवी से एक पत्र मे विनोद करते हैं

"कितना अभिमान? जेल मे हो आई तो अब पत्र ही नही लिखोगी? एक जैसे तुम्ही अकेली जा सकती थी न? तबीयत कैसी है? कमलनयन कहा है? उसको मैने खत लिखा है। ऐसा मालूम नही होता कि वह उसे मिला हो।

"मदालसा तो मानो सो गई हो। शिवाजी तथा राधाकृष्ण के बारे मे लिखना। इन सबकी आशा तुमसे रखता हू। हम तीनो मजे मे है।"

आश्रम के कुलगुरु तथा कुटुम्बवत्सल पिता की तरह वह एक पत्र मे आश्रम की एक बहन को लिखते है .

"तुम्हारा पत्र और हाजिरी-पत्रक मिल गए। हाज़िरी-पत्रक मुझे भेजती ही रहना। उससे मुझे बहुत-सी बाते जानने को मिलती है।

"मणि बहन से काफी समाचार पा सका हू। भडार का काम तो निर्विघ्न पूरा करना। आश्रम को हम कुटुम्ब मानते है, और उसे कुटुम्ब मानकर सारे देश को, और उसमे से तमाम दुनिया को परिवार समझने का सबक सीखना चाहते है। इसलिए जैसे कुटुम्ब की जिम्मेदारी मिलजुल कर किसी तरह निभा लेते है, उसी तरह भडार के बारे मे करना।

"गो सेवा की या मेरी और किसी बात से तुम्हे डरना नही चाहिए। मै तो जो मुझे सूझता है, सो लिखता रहता हू, ताकि उसमे से जितना तुम्हे रुचे, तुमसे सहा जाये, उतना तुम प्रसग के आते ही ग्रहण कर लो।"

एक वार रात को दो वजे वापू पानी पीने के लिए उठे तव उन्हे आश्रम की एक वहन की तबीयत का खयाल आया। वह कुछ दिनो से बीमार थी। उसी समय क्या खाने को देना, किस चीज का परहेज रखना तथा किन-किन दवाइयो का उपयोग करना, इसके वारे मे विस्तार से लिखा। उस वहन को जव वापू का वह पत्र मिला तव वह हर्प से गद्गद् हो गई।

एक वार उन्हे एक वडे राजनेता ने पत्र लिखा। उन्हे यह गलतफहमी हो गई थी कि किसी दूसरे साथी ने उनकी चुगली बापू से कर दी है कि वह अवतक शराव पीते है। इस पत्र मे उन नेता महोदय ने लिखा कि अवतक तो मैने शराव छुई तक नही है, किन्तु अव चूकि श्री 'क' ने आपसे इस प्रकार कहा है, मै आज से शराव पीना फिर से आरम्भ कर रहा हू।

गाधीजी ने इस पत्र के उत्तर मे सिर्फ एक पोस्टकार्ड भेजा जिसमे पेन्सिल से सिर्फ तीन सतरे लिखी ·

"आपके पत्र मे रोष है, इसलिए मै इसका उत्तर नही दे रहा हू।"

बापू का यह पत्र उनकी मौन तेजस्विता के साथ ही ऐसी समस्याओ को कुशलता के साथ हल करने के गुण पर भी प्रकाश डालता है। वह इसमे भी सिद्धहस्त थे।

स्व० जमनालालजी वजाज को लिखे एक पत्र मे किस खूबी से गागर मे सागर भरा गया है:

"ज्ञान के सम्वन्ध मे तार दिया है, सो मिला होगा। कमला के लिए भी आने की जरूरत नही। कमलनयन आता-जाता

रहता है। जानकीदेवी से भी मिला था। हीरालालजी का उदाहरण सोलह आने है। वह सव मर्यादाए लाघ गया। उसनें यह सव प्रत्यक्ष रीति से तोड दी। मैंने मन से भोगो को भोगा और वाह्येन्द्रियो पर धीरे-धीरे अधिकार प्राप्त किया। यदि मन को भी अन्त मे वश मे न कर सका होता तो मिथ्याचारी मे मेरी गिनती आसानी से होती। परन्तु मुझमे तो जो फेरफार हुए, उनका स्पर्श हीरालाल को कैसे होता ? विनोवा, वालकृष्ण और छोटेलाल की तबीयत कैसे रहती है ? लक्ष्मीनिवास की पत्नी सुशीला ने पाच हजार रुपये हरिजन-सेवा के लिए दिये, उसका तुमने क्या फैसला किया ?

"देवदास, लक्ष्मी रणछोडदास के वंगले मे रहते है। राजाजी घनश्यामदास के साथ। मेरी तबीयत ठीक हो रही है। नारणदास का पुरुपोत्तम वहुत करके यहा आयगा। गिरधारी फिर आज गिरफ्तार होगा। कल छूटा था।

"तुम्हारा खानपान आदि ठीक चल रहा होगा। मुझे विस्तार से लिखना।"

८ नवम्वर, १९३२ के एक पत्र मे मृत्यु के सम्वन्ध मे विचार दर्शाते हुए हमे उत्साहित करते है .

"मुझे तो वहुत वार ऐसा लगता है कि जन्म की अपेक्षा मृत्यु अधिक अच्छी चीज़ होनी चाहिए। जन्म से पहले माता के गर्भ मे जो यातना भोगनी पडती है, उसे तो मैं छोड देता हूं। परन्तु जनमते ही जो यातना शुरू होती है, उसका तो हमे प्रत्यक्ष अनुभव है। उस वक्त की पराधीनता कैसी है ? और वह तो सवके लिए एक-सी होती है। मृत्यु मे यदि जीवन स्वच्छ हो,

तो पराधीनता-जैसी कुछ नही रहती। वालक मे ज्ञान की इच्छा नही होती और न उसमे किसी तरह ज्ञान की सभावना ही होती है। इतना ही नही, वल्कि हम जानते है कि 'वहुत लोगो की मृत्यु ऐसी स्थिति मे होती है। जन्म के माने तो दु ख मे प्रवेश है ही, पर मृत्यु संपूर्ण दु ख-मुक्ति हो सकती है। इस प्रकार मृत्यु के सौदर्य के विषय मे और उसके लाभ के विषय मे हम वहुत-कुछ विचार कर सकते है और इसे अपने जीवन मे सभवनीय वना सकते है।"

वापू के तमाम पत्रो का यदि सग्रह हो जाये तो महज़ उन्ही के आधार पर उनके युग का अच्छा इतिहास लिखा जा सकता है। पत्रो मे वह राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, घरेलू, दाम्पतिक आदि सभी समस्याओ को स्पर्श करते थे। मनुष्यता का उत्कर्ष, विश्व-शान्ति, दीन-दलित पीडितो का उद्धार, इनपर उनका विशेष जोर रहता था। पत्रो की भाषा सरल, छोटे-छोटे वाक्य, यहा से वहा तक स्नेह, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सुधार की चिन्ता से भरपूर। बापू की स्मृति की तरह उनका यह पत्र-साहित्य भी ससार मे युग-युग तक अमर रहेगा।

जून, १९५६

: ३ :

काव्यांजलि

पुण्याह

अन्धकार था, पूर्व पुण्य से, अरुण किरण की कोर दिखी।
"डरो न, लो मै आ पहुचा हू," यह आशा की रेख लिखी॥
भावी भय से राहु-केतु के उर मे लगा द्वेष का दाह।
वन्दी गाधी हुआ, आज है, भारत मे जग का पुण्याह॥

गांधीजी के कारावास-दिवस पर
साबरमती
१८ मार्च, १९२३

तू आया !

भूला था जग, सोये थे जन, विस्मृति निद्रा मादक थी।
ज्ञान अन्ध था, तर्क दुष्ट था, हृदय मूढता घातक थी॥
सत्य कैद था, दम्भ मुक्त था, माया की छाई माया।
कर्म सुप्रेरित विश्वविमोहन 'आत्मतेज' ले तू आया॥

धर्म पंगु था, कर्म हीन था, नास्तिकता का था सत्कार।
प्रेम धर्म था हुआ पराजित, पशुवल का था जय जयकार॥
ईश्वर सत्ता का सेवक था, शैतानी वैभव छाया।
प्रेरकता की दी निसर्ग ने 'सत्यशाक्त' ले तू आया॥

प्रकृति क्षुब्ध थी, विकृति मुग्ध थी, सस्कृति की अति दुर्गति थी।
रक्तसिक्त रणचण्डी की चहु ओर चमकती दुष्कृति थी।।
नर हृदयो ने क्रूर, हिस्र, भय-भावो को था अपनाया।
नर को नारायण करने हित 'दया-धर्म' ले तू आया।।

पूरव ने गौतम को पाया, पश्चिम ने ईसा देखा।
असुर और शैतान प्रजा ने मूर्तिमान यम को देखा।।
भारत ने अपना उद्धारक जाग्रत जग ने गुरु पाया।
गगन गिरा ने जय जय गाया "तू आया है, तू आया।"

साबरमती
अक्तूबर, १९२३

गांधी

बुद्ध और ईसा का वारिस जगतीतल पर आया है,
उनके यश-गौरव को जग मे जिसने और बढाया है।
जगती की एकत्र करुणता, व्याकुलता, पीडा की चीख,
नभ को भेद धरा पर लाई, करुणा मानवता की भीख।

जग की सारी करुण-व्यथा है, जिसकी आखो से बहती,
प्रभु की सारी मगल गाथा, जिसकी जिह्वा है कहती।
मुट्ठीभर हाडो मे देखो, कैसा तेज समाया है!
सूरज मानो आसमान से उतर धरणि पर आया है।

हिन्दू का यह आत्म-भाव है, मुसलमान का बान्धव-प्रेम,
ईसाई का दया-धर्म है, जिसके कण-कण का शुभ नेम।

जग की भावी संस्कृति की प्रत्यक्ष मूर्ति यह आई है,
भारत ने जग को अपनी यह अनुपम भेट चढाई है।

प्रतिपक्षी से भी जो कहता, "मेरा प्रेम तुम्हारे साथ,
तेरे अस्त्र-शस्त्र का उत्तर है, ये मेरे खाली हाथ।"
कूटनीति का कर मुह काला सत्य-नीति का जय जयकार,
जग के आलोचक विस्मित हो, कहते आज पुकार-पुकार।

दावा वुद्धि-शास्त्रियो का था, यह है अनुचित विफल प्रयास,
वही सजीव सफलता वन कर, फैलाता है पुण्य प्रकाश।
शत्रुपक्ष जव दावानल-सा, है करता अति वाण-प्रहार,
तव वह हँस-हँस कर के देता, उसको प्रेम-पुष्प-उपहार।

अजमेर जेल
१९३२

भाग्योदय

क्यो प्रफुल्लित हो रही प्राची दिशा,
सज रही क्यो साज सुवरण भामिनी?
क्यो उषा उत्कंठिता है देखती,
कनक-आरति-दीप ले करकमल मे?

क्यो विहग-कुल हर्ष से उन्मत्त हो,
हृदय है संगीत से निज खोलते?
कमल दल क्यो हँस रहे रसमुग्ध हो,
क्यो लताएं गर्व से है झूमती?

विटप क्यो ये सजग सिर ऊचा किये,
टक लगा अवलोकते है पूर्व को ?
भटकते है भृग क्यो गुजार कर,
क्यो प्रकृति यह प्रेयसी इठला रही ?

झाकता यह कौन क्षितिज-गवाक्ष से,
भर रहा उत्साह दिव्य दिगत मे?
पुण्य पावक गोल-सा निर्धूम यह
कर रहा पावन क्रमिक उत्कर्ष से।

जीव को जीवन, जगत को भास्कर,
भक्त को भगवान, लोचन अध को?
प्रकृति को उसका गया धन मिल गया,
पूर्व का तो धन्य! भाग्योदय हुआ।

●